इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD - 10

प्रेमचंद की कहानियाँ

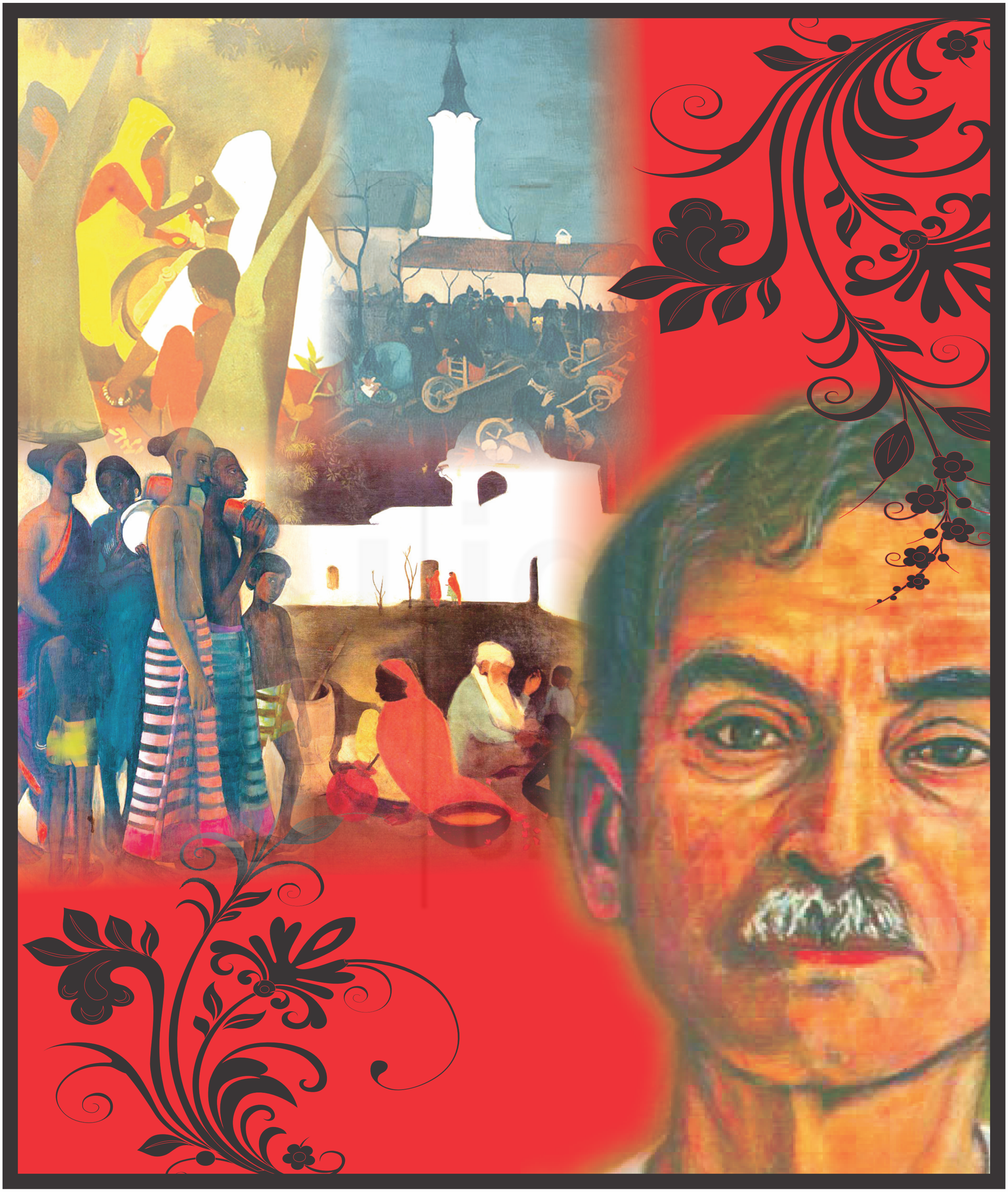

प्रेमचंद की कहानियाँ

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-10
प्रेमचंद की कहानियाँ

खंड

1

इकाई 1
भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और प्रेमचंद की कहानियाँ 7

इकाई 2
स्त्री जीवन और प्रेमचंद 21

इकाई 3
दलित जीवन और प्रेमचंद 31

इकाई 4
किसान समस्या, साम्प्रदायिकता की समस्या और प्रेमचंद 40

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
भारतीय भाषा केन्द्र जे.एन.यू., नई दिल्ली

श्री ज्ञानरंजन
जबलपुर, मध्य प्रदेश

प्रो. रामदेव शुक्ल
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दी.,द.,उ.,गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट बटरोही
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रो. गोपाल राय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. विजय बहादुर सिंह
भोपाल, मध्य प्रदेश

संकाय सदस्य
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(पाठ्यक्रम संयोजक)

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	1–4

विशेष सहयोग : डॉ. नमिता सत्येन,
डॉ. वावळकर शिवदत्ता बाजीराव,
सुश्री भावना सरोहा

सचिवालयिक सहयोग: श्री मनोज कुमार सहनी

सामग्री निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

अक्तूबर, 2016

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2016*

ISBN-978-93-86100-93-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सत्यकाम, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : "Agro based Environment Friendly"

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : अमेटी ऑफसेट प्रिंटर्स, 12/38, साइट-IV, साहिबाबाद इन्डस्ट्रियल एरिया, गाजियाबाद, (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम का परिचय

एम.ए. द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी के रूप में अब आप 16 क्रेडिट का 4 पाठ्यक्रमों का कहानी संबंधित माड्यूलर पढ़ रहे हैं। 'प्रेमचंद की कहानियाँ' (एम.एच.डी.-10) इन चारों पाठ्यक्रमों में पहला पाठ्यक्रम है। यह पाठ्यक्रम 4 खंडों और 19 इकाइयों में विभाजित है। इस माड्यूलर का प्रत्येक पाठ्यक्रम 4 क्रेडिट का है।

यह पाठ्यक्रम प्रेमचंद की कहानियों पर केंद्रित है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य प्रेमचंद की कहानियों के महत्व से परिचित कराना है। एम.एच.डी.-9 में आप ''कहानी के स्वरूप और विकास'' का अध्ययन कर चुके हैं। एम.एच.डी.-03 में भी आपने कुछ प्रमुख कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन किया है और एम.एच.डी.-11 में कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन करेंगे। इस पाठ्यक्रम में प्रेमचंद की कुल 20 कहानियाँ संकलित हैं जिनमें 13 कहानियों का विशेष अध्ययन करना है। यह पाठ्यक्रम प्रेमचंद की कहानियों के बहाने हिन्दी कहानी की विकास यात्रा को भी रेखांकित करता है।

इस पाठ्यक्रम में विस्तृत अध्ययन के लिए चयनित कहानियों का विश्लेषण दिया गया है। हमारा विश्वास है, इस विश्लेषण से विद्यार्थियों की आलोचनात्मक क्षमता का विकास होगा। वे इन कहानियों के विश्लेषण से यह सीख सकेंगे कि कहानी को किस प्रकार पढ़ा और विश्लेषित किया जाता है। इस पाठ्यक्रम में संकलित कहानियाँ प्रेमचंद की वर्तमान प्रासंगिकता को रेखांकित करती हैं। इस पाठ्यक्रम का विस्तृत विवरण इस प्रकार है–

खण्ड-1

इकाई-1 भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और प्रेमचंद की कहानियाँ

इकाई-2 स्त्री जीवन और प्रेमचंद

इकाई-3 दलित जीवन और प्रेमचंद

इकाई-4 किसान जीवन, साम्प्रदायिकता की समस्या और प्रेमचंद

खण्ड-2

इकाई-5 प्रेमचंद की कहानी कला

इकाई-6 प्रेमचंद की कहानियाँ और हिंदी आलोचना

इकाई-7 ''मनोवृत्ति'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-8 ''बूढ़ी काकी'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-9 ''बेटों वाली विधवा'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

खण्ड-3

इकाई-10 ''नमक का दरोगा'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-11 ''विध्वंस'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-12 ''गुल्ली डण्डा'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-13 ''जुलूस'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-14 ''समर-यात्रा : विश्लेषण और मूल्यांकन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खण्ड-4

इकाई-15 ''सुजान भगत'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-16 ''दो बैलों की कथा'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-17 ''सवासेर गेहूँ'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-18 ''सद्गति'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-19 ''कफन'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

हम चाहते हैं, हमारे विद्यार्थी हिन्दी कहानी के पूरे परिदृश्य से परिचित हों। इस पाठ्यक्रम को तैयार करने का उद्देश्य भी यही है। हमें उम्मीद है, इन इकाइयों के अध्ययन के पश्चात आप प्रेमचंद की कहानियों के विस्तृत फलक से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।

शुभकामनाओं सहित।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खण्ड 1 परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के दूसरे पाठ्यक्रम 'प्रेमचंद की कहानियाँ' का पहला खण्ड है। इस खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं –

इकाई - 1 भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और प्रेमचंद की कहानियाँ

इकाई - 2 स्त्री जीवन और प्रेमचंद

इकाई - 3 दलित जीवन और प्रेमचंद

इकाई - 4 किसान जीवन, साम्प्रदायिकता की समस्या और प्रेमचंद

इस खण्ड में आप प्रेमचंद के चिंतक रूप से परिचित होंगी/होंगे। इस खंड की पहली इकाई में प्रेमचंद के स्वाधीनता संबंधी विचारों को रेखांकित करते हुए उनकी उन कहानियों पर बात की गई है जो उन्हें स्वाधीनता का प्रबल पक्षधर बनाती हैं। इस इकाई में आप पाएंगी/पाएंगे कि प्रेमचंद स्वाधीनता का विस्तृत अर्थ ग्रहण करते हैं। इकाई-2 में प्रेमचंद के स्त्री विषयक विचारों और उनकी कहानियों की पड़ताल की गई है। इसी प्रकार इकाई-3 में प्रेमचंद के दलित जीवन विषयक विचारों और कहानियों का मूल्यांकन किया गया है। प्रेमचंद को किसान जीवन का लेखक माना जाता है। उन्होंने साम्प्रदायिकता पर भी जोरदार प्रहार किया है। इकाई-4 में प्रेमचंद के किसान जीवन और साम्प्रदायिकता संबंधी विचारों का मूल्यांकन करते हुए उनकी कुछ कहानियों का संदर्भ लिया गया है।

हमें विश्वास है, इस खंड के अध्ययन के पश्चात आप प्रेमचंद के साहित्य को ठीक ढंग से समझ सकेंगी/सकेंगे।

शुभकामनाओं सहित।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और प्रेमचंद की कहानियाँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 स्वाधीनता का आशय

1.2.1 उपनिवेशवाद से मुक्ति

1.2.2 किसानों की स्वाधीनता

1.2.3 सामन्तवाद से व्यापक भारतीय समाज की मुक्ति

1.2.4 स्त्रियों की स्वाधीनता

1.2.5 दलित मुक्ति

1.2.6 दिमागी गुलामी से स्वाधीनता

1.2.7 मजदूरों की शोषण-दमन से मुक्ति

1.3 स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण

1.4 राष्ट्रवाद का चित्रण

1.5 स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवाद का अन्तस्सम्बन्ध

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास

1.0 उद्देश्य

यह प्रेमचंद की कहानियों पर केन्द्रित पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम में प्रेमचंद की चुनी हुई कहानियों के विश्लेषण के साथ ही उनकी वैचारिकता का भी अध्ययन किया जाएगा। आप जो इकाई पढ़ने जा रहे/रही हैं, वह इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- प्रेमचंद की स्वाधीनता संबंधी समझ को जान सकेंगे/सकेंगी;
- यह जान सकेंगे/सकेंगी कि प्रेमचंद के लिए पूर्ण स्वराज का आशय क्या था?
- प्रेमचंद की कालजयिता के असल कारणों की पहचान कर सकेंगे/सकेंगी;
- राष्ट्रवाद संबंधी प्रेमचंद की दृष्टि को जान सकेंगे/सकेंगी;
- स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवाद के अन्तस्सम्बन्ध को रेखांकित कर सकेंगे/सकेंगी;
- यह जान सकेंगे/सकेंगी कि प्रेमचंद को 'कलम का सिपाही' क्यों कहा गया।

1.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद ने तीन सौ से अधिक कहानियों की रचना की है। अपनी कहानियों में उन्होंने विविध विषयों को उठाया है, जिनमें स्वाधीनता से सम्बन्धित कहानियाँ विशेष महत्व की

हैं। उनकी जीवनी लिखने वाले उनके पुत्र अमृतराय ने उन्हें 'कलम का सिपाही' में स्वाधीनता-आन्दोलन के एक प्रतिबद्ध सिपाही के रूप में ही स्थापित किया है।

प्रेमचंद ने अपनी स्वाधीनता विषयक कहानियों में स्वाधीनता-आन्दोलन का मार्मिक चित्रण तो किया ही है, साथ ही 'स्वाधीनता' शब्द को व्यापक अर्थ प्रदान किया है। उन्होंने 'स्वाधीनता' का वही अर्थ नहीं लिया, जो अर्थ उस दौर में ढेर सारे दूसरे राष्ट्रवादी ले रहे थे। आइए, प्रेमचंद के आशय को समझते हैं।

1.2 स्वाधीनता का आशय

स्वाधीनता प्राप्ति प्रेमचंद के लेखन मात्र का नहीं, जीवन का उद्देश्य था। यह अकारण अथवा महज संयोग नहीं है कि उनके साहित्य का अधिकांश भाग स्वाधीनता आंदोलन के बाह्य और आन्तरिक पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण करता है। आज की आलोचनात्मक भाषा में कहें तो स्वाधीनता-विमर्श प्रेमचन्द के लेखन का बीज तत्व है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि प्रेमचंद पूर्ण स्वराज के हिमायती थे और स्वराज की उनकी धारणा इस देश के शोषितों-पीड़ितों के स्वराज से पुष्ट होती थी।

प्रेमचंद की स्वाधीनता विषयक रचनाओं से जो तथ्य उभर कर आते हैं, उनके अनुसार उन्होंने स्वाधीनता के निम्नलिखित आशय ग्रहण किए हैं -(प्रो. मैनेजर पाण्डेय)।

1.2.1 उपनिवेशवाद से मुक्ति

प्रेमचंद के लेखन में स्वाधीनता का पहला और महत्वपूर्ण आशय भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराना है। वे हर हाल में भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त देखना चाहते थे। वे जानते थे कि पराधीनता सबसे बड़ा दुःख है।

1.2.2 किसानों की स्वाधीनता

अपने लेखन में प्रेमचंद ने स्वाधीनता का दूसरा आशय लिया– किसानों की स्वाधीनता से। जाहिर है, यह स्वाधीनता दोहरे अर्थ में ही प्रासंगिक है। प्रेमचंद चाहते थे कि भारत स्वाधीन हो और स्वाधीन भारत के किसान भी स्वाधीन हों। उन्हें किसी जमींदार की गुलामी न करनी पड़े।

1.2.3 सामन्तवाद से व्यापक भारतीय समाज की मुक्ति

प्रेमचंद ने स्वाधीनता का तीसरा महत्वपूर्ण आशय लिया– सामन्तवाद से व्यापक भारतीय समाज की मुक्ति। वे अच्छी तरह जानते थे कि जब तक इस देश में सामन्ती व्यवस्था रहेगी, वर्ण-भेद रहेगा, तब तक कोई भी राजनीतिक स्वाधीनता प्रभावशाली नहीं हो सकेगी। जाति-भेद के रहते अच्छा लोकतंत्र भी नहीं आ सकता है।

1.2.4 स्त्रियों की स्वाधीनता

स्वाधीनता का चौथा आशय लेते हुए प्रेमचंद ने अपने लेखन में यह स्पष्ट किया कि जब तक हमारे समाज में स्त्रियाँ स्वाधीन नहीं होतीं, तब तक स्वाधीनता अधूरी रहेगी। समाज और राष्ट्र के समुचित विकास के लिए उन्होंने स्त्रियों की मुक्ति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है।

1.2.5 दलित मुक्ति

प्रेमचंद के लिए स्वाधीनता का एक महत्वपूर्ण आशय था– अछूतपन को मिटाकर सदा-सदा के लिए छूत-अछूत की समस्या को समाप्त करना। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि अपने अन्तिम दिनों में उन्होंने अपने लेखन का अधिकांश दलित मुक्ति को ही समर्पित किया।

1.2.6 दिमागी गुलामी से स्वाधीनता

प्रेमचंद के लिए स्वाधीनता का एक आशय था– दिमागी गुलामी से स्वाधीनता। उनकी दृष्टि में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वाधीनता तब तक कारगर नहीं हो सकती, जब तक कि व्यक्ति मानसिक रूप से गुलाम हो। इसलिए प्रथमतः आवश्यक है कि प्रत्येक भारतीय को दिमागी गुलामी से स्वाधीन होना चाहिए।

1.2.7 मजदूरों की शोषण-दमन से मुक्ति

प्रेमचंद किसानों के साथ ही मजदूरों को भी शोषण-मुक्त देखना चाहते थे। उनके लिए स्वाधीनता का आशय था, एक ऐसा समाज बने जो पूर्णतः शोषण-मुक्त हो और इस समाज से निर्मित हो एक सम्प्रभु राष्ट्र। कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रेमचंद की राष्ट्रवाद की अवधारणा पूर्णतः स्वाधीनता पर केन्द्रित है। जितना विस्तृत है उनके लिए स्वाधीनता का आशय, उतना ही विस्तृत है उनका राष्ट्रवाद। यह सच है कि राष्ट्रीय चेतना जब सामाजिक चेतना से जुड़ती है, तभी वह मनुष्यधर्मी होती है।

1.3 स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में स्वाधीनता आंदोलन का जीवन्त चित्रण किया है। उनके लिए स्वाधीनता आन्दोलन का मतलब था– विदेशियों को भगाना और आत्म परिष्कार। स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण करते हुए उन्होंने अंग्रेजों की कूटनीति, भारतीयों के प्रति अंग्रेजों की दृष्टि, स्वराज के लिए होने वाले प्रयासों, स्वदेशी आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन में हिस्सा लेने वालों के संघर्ष, शराबबन्दी आंदोलन और साथ ही स्वाधीनता आंदोलन के प्रति विभिन्न वर्गों के विचारों को भी चित्रित-वर्णित किया है।

'अधिकार चिन्ता' प्रेमचंद की एक ऐसी कहानी है, जिसमें वे जानवरों के माध्यम से अंग्रेजों की कूटनीति का खुलासा करते हैं। जिस प्रकार अंग्रेज 'फूट डालो राज करो' के सिद्धान्त पर चल रहे थे, बिलकुल उसी प्रकार टामी भी चलता है। प्रेमचंद लिखते हैं, "टामी ने एक नयी चाल चली। वह कभी किसी पशु से कहता, तुम्हारा फलाँ शत्रु तुम्हें मार डालने की तैयारी कर रहा है। किसी से कहता फलाँ तुमको गाली देता था। जंगल के जन्तु उसके चकमे में आकर आपस में लड़ जाते और टामी की चाँदी हो जाती।"2 (मानसरोवर, खण्ड 6, पृ. 195) लेकिन प्रेमचंद जानते थे कि इस प्रकार से बराबर चाँदी नहीं होगी और कूटनीति पर जीने वाले एक दिन टामी की तरह हार जाएँगे।

स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण करते हुए प्रेमचंद सबसे पहले अंग्रेजों की उस दृष्टि का चित्रण करते हैं, जो हिन्दुस्तानियों को जानवर से भी गया-गुजरा समझती है। प्रेमचंद ऐसी दृष्टि के प्रति सार्थक घृणा पैदा करने की सफल कोशिश करते हैं। उनकी 'पत्नी से पति' शीर्षक कहानी में पति अंग्रेज सरकार का हिमायती है और उसकी पत्नी कांग्रेस की पक्षधर है। एक दिन पत्नी कांग्रेस के जलसे में शामिल होकर दो सौ रुपये चन्दा देती है। इस कहानी में प्रेमचन्द ने प्रथमतः पति और पत्नी के चरित्र को स्पष्ट किया है। पति को हिन्दुस्तानी होने पर शर्म आती है, लेकिन पत्नी को हिन्दुस्तानी होने का गर्व है। वह

पति का तिरस्कार करते हुए कहती है, "भारत के सिवा और भी कोई देश है, जिस पर किसी दूसरी जाति का शासन हो? छोटे-छोटे राष्ट्र भी किसी दूसरी जाति के गुलाम बनकर नहीं रहना चाहते। क्या एक हिन्दुस्तानी के लिए यह लज्जा की बात नहीं है कि वह अपने थोड़े-से फायदे के लिए सरकार का साथ देकर अपने ही भाइयों के साथ अन्याय करे?" (वही, खण्ड 7, पृ. 14) दरअसल प्रेमचंद 'पति' जैसे टुच्चे और चमचे व्यक्ति का चरित्र सामने लाकर दिखाना चाहते थे कि इस देश में ऐसे कपूत भी हैं, लेकिन देखने की बात यह है कि वे इतने ही पर नहीं छोड़ देते। पति महोदय को बाकायदा अपने अंग्रेज ऑफिसर से गाली सुनते हुए भी चित्रित करते हैं। उनका अधिकारी कहता है- यू ब्लडी! सरकार तुमको पाँच सौ रुपये इसलिए देता कि तुम अपने वाइफ के हाथ से कांग्रेस को चन्दा दिलवाए।" (वही, खण्ड 7, पृ. 20) प्रेमचंद दिखाना चाहते थे कि जब अंग्रेजों का रवैया अपने चाहने वालों के प्रति ऐसा है तो शेष भारतीयों के प्रति कितना अमानवीय होगा? जाहिर है, बहुत अमानवीय व्यवहार था।

प्रेमचंद की एक कहानी है— इस्तीफा। इस कहानी के नायक फतहचन्द एक दफ्तर में बाबू हैं। उनका अधिकारी एक अंग्रेज है और बात-बात पर गाली देता है। एक दिन वह हद कर देता है। प्रेमचन्द के शब्दों में, "साहब अब क्रोध को न बर्दाश्त कर सके। हण्टर लेकर दौड़े। चपरासी ने देखा, यहाँ खड़े रहने में खैरियत नहीं है, तो भाग खड़ा हुआ। फतहचन्द अभी तक चुपचाप खड़े थे। साहब चपरासी को न पाकर उनके पास आया और उनके दोनों कान पकड़कर हिला दिया। बोला- तुम सूअर गुस्ताखी करता है?" (मानसरोवर, खण्ड 5, पृ. 238) आगे प्रेमचन्द लिखते हैं, "फतहचन्द दफ्तर के बाबू होने पर भी मनुष्य ही थे।" और एक मनुष्य के साथ एक अंग्रेज का यह व्यवहार था। प्रेमचंद चाहते थे कि लोगों में इस व्यवहार के प्रति घृणा पैदा हो ताकि स्वाधीनता की लड़ाई तेज हो सके और भारत स्वाधीन हो सके।

'दीक्षा' (वही, खण्ड 3, पृ. 133) शीर्षक कहानी में अंग्रेज जज भारतीय वकील को खूब गालियाँ देता है। वैसे इस कहानी में प्रेमचंद शराबखोरी पर भी टिप्पणी करते हैं। अगर वकील शराब न पीता होता तो अपनी पूरी जाति के लिए गाली न सुनता।

अंग्रेजों ने बाहर की दुनिया में यह प्रचारित कर रखा था कि भारतीय बहुत बर्बर होते हैं। उन्होंने बार-बार अंग्रेज स्त्रियों की इज्जत पर हमला किया है, इसीलिए उनके साथ ऐसी सख्ती की जाती है। प्रेमचंद अंग्रेजों द्वारा फैलाई हुई इस अफवाह का जवाब देते हुए अपनी रचनाओं में उनकी सच्चाई बयान करते हैं। उन्होंने अपनी 'शूद्रा' (वही, खण्ड-2, पृ. 241) शीर्षक कहानी में विस्तार से चित्रित किया है कि किस प्रकार एक अंग्रेज एजेंट बहका-फुसलाकर लाई हुई स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बनाता है। यहाँ 'कर्मभूमि' में मुन्नी के साथ अंग्रेजों द्वारा किए गए बलात्कार को भी याद करना प्रासंगिक होगा। प्रेमचन्द यह दिखा रहे थे कि बर्बर भारतीय नहीं, अपने को सभ्य कहने वाले अंग्रेज हैं।

प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में इस बात को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया कि अंग्रेज सरकार भारतियों को दोयम दर्जे का भी नागरिक नहीं मानती । उनकी दृष्टि में भारतीय गुलाम हैं और गुलामों को मनुष्य कहलाने का अधिकार नहीं होता। यह भी महज संयोग नहीं है कि प्रेमचंद के इस प्रयोग का बड़ा असर हुआ था।

प्रेमचंद अंग्रेजों की मनुष्य विरोधी नीतियों का वर्णन करके ही चुप नहीं हो जाते, बल्कि उससे बहुत आगे बढ़कर स्वराज के लिए होने वाले प्रयासों का चित्रण करते हैं। इस दृष्टि से 'समर-यात्रा' एक अविस्मरणीय कहानी है। इस कहानी में प्रेमचंद ने स्वाधीनता-

आन्दोलन के साथ जुड़ी जन-मानस की भावनाओं का अद्‌भुत चित्रण किया है। 'नोहरी' के चरित्र-चित्रण में उनकी कलात्मकता और संवदेनशीलता देखने बनती है। 'नोहरी' एक गरीब बुढ़िया है। लेकिन उसमें गजब का उत्साह है। वह सत्याग्रहियों का स्वागत करना चाहती है, पर उदास है। प्रेमचंद के शब्दों में, "नोहरी को अब कौन पूछेगा? यह सोचकर उसका मनस्वी हृदय मानो किसी पत्थर से कुचल उठा। हाय! अगर भगवान ने उसे इतना अपंग न कर दिया होता, तो आज झोंपड़े को लीपती, द्वार पर बाजे बजवाती, कढ़ाव चढ़ा देती, पूड़ियाँ बनाती और जब लोग खा चुकते, तो अंजुली भर रुपये भेंट कर देती।" (मानसरोवर, खण्ड 7, पृ. 48) कहना न होगा कि प्रेमचंद अच्छी तरह पहचान रहे थे कि आजादी की ललक सबसे ज्यादा इसी गरीब वर्ग में है और आजादी के लिए त्याग करने का दम भी इसी वर्ग में है। 'नोहरी' के दरवाजे पर उत्सव तो नहीं होता, लेकिन उस महान उत्सव में विघ्न डालने वालों से भिड़ती है नोहरी ही। पुलिस वाले आकर सत्याग्रहियों को अपशब्द कहते हैं। भीड़ को तितर-बितर करते हैं। तब नोहरी आती है। प्रेमचंद के शब्दों में 'नोहरी' इस वक्त दोपहरी की धूप की तरह काँप रही थी। दारोगा एक क्षण के लिए सन्नाटे में आ गया। (वहीं, पृ. 52) वह दारोगा की तरफ घूमती हुई बोली, "क्यों खुदा की दुहाई देकर खुदा को बदनाम करते हो। तुम्हारे खुदा तो तुम्हारे अफसर हैं; जिनकी तुम जूतियाँ चाटते हो। तुम्हें तो चाहिए था कि डूब मरते चुल्लू भर पानी में! जानते हो, यह लोग जो यहाँ आए हैं, कौन हैं? यह वह लोग हैं, जो हम गरीबों के लिए अपनी जान तक होमने को तैयार हैं। तुम उन्हें बदमाश कहते हो। तुम जो घूस के रुपये खाते हो, जुआ खेलते, चोरियाँ करवाते हो, डाके डलवाते हो, भले आदमियों को फँसाकर मुट्ठियाँ गरम करते हो और अपने देवताओं की जूतियों पर नाक रगड़ते हो, तुम इन्हें बदमाश कहते हो।" (वही) उस दौर में यह कहने का कलेजा 'नोहरी' के वर्ग और उस वर्ग के प्रतिनिधि लेखक प्रेमचंद में ही था। नोहरी के पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। वह इस भाव से आह्लादित थी कि सुदिन आएँगे और वह अपनों का सुखी चेहरा देखेगी। वह नोहरी ही है जो दारोगा से कहती है, "हमारा ही पैसा खाते हो और हमीं को आँखें दिखाते हो?" (वही, खण्ड-7, पृ.52) वह गाँव वालों को अंग्रेजी जुल्म के खिलाफ ललकारती है, "आज तुमने देख लिया न कि हमारे ऊपर कानून से नहीं लाठी से राज हो रहा है। हम इतने बेशर्म हैं कि इतनी दुर्दशा होने पर भी कुछ नहीं बोलते। हम इतने स्वार्थी, इतने कायर न होते, तो उनकी मजाल थी कि हमें कोड़ों से पीटते। जब तक तुम गुलाम बने रहोगे, उनकी सेवा-टहल करते रहोगे, तुम्हें भूसा-चोकर मिलता रहेगा; लेकिन जिस दिन तुमने कन्धा टेढ़ा किया, उसी दिन मार पड़ने लगेगी। कब तक इस तरह मार खाते रहोगे? कब तक मुर्दों की तरह पड़े गिद्धों से अपने को नोचवाते रहोगे? अब दिखा दो कि तुम भी जीते-जागते हो और तुम्हें भी अपनी इज्जत-आबरू का कुछ ख्याल है। जब इज्जत ही न रही तो क्या करोगे खेती-बारी करके, धर्म कमा करके? जी कर ही क्या करोगे? क्या इसीलिए जी रहे हो कि तुम्हारे बाल-बच्चे इसी तरह लातें खाते जाएँ, इसी तरह कुचले जाएँ? छोड़ो यह कायरता! आखिर एक दिन खाट पर पड़े-पड़े मर जाओगे। क्यों नहीं इस धर्म की लड़ाई में आकर वीरों की तरह मरते।" (मानसरोवर, खण्ड-7, पृ. 54-55) कहना न होगा कि नोहरी की आवाज में प्रेमचंद अपने समय के सोए हुए लोगों को जगा रहे थे। उनका स्पष्ट मानना भी था कि साहित्य का काम है, सोए हुए को जगाना।

प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'जुलूस' (वहीं, पृ. 35) में स्वाधीनता-आन्दोलन की व्यापकता का चित्रण किया है। इस कहानी में एक ओर इब्राहिम अली हैं, जो देशहित में प्राण त्याग देते हैं तो दूसरी ओर बीरबल सिंह हैं, जो जानते हैं कि 'गुलामी की जिन्दगी पर गर्व नहीं किया जा सकता'। फिर भी गुलामी कर रहे हैं। प्रेमचंद दिखाते हैं कि किस प्रकार एक ही घर में पत्नी स्वाधीनता-आन्दोलन में हिस्सा लेती है और पुरुष बाधा खड़ा करता है।

यह भी गौर करने की बात है कि प्रेमचंद ने स्त्रियों में स्वाधीनता की ललक का मार्मिक चित्रण किया है। 'जुलूस' शीर्षक कहानी में सम्भ्रान्त घरों की स्त्रियाँ जुलूस में शामिल होकर देश की आजादी के लिए लड़ती हुई चित्रित की गई हैं। यहाँ यह बिलकुल साफ है कि प्रेमचंद की दृष्टि में यह जरूरी था कि स्वाधीनता आन्दोलन में स्त्रियों और दलितों की भागीदारी होनी ही चाहिए अन्यथा लड़ाई जीती नहीं जा सकेगी। यहाँ यह भी याद करना होगा कि तत्कालीन समाज में ढेरों मिट्ठन ने अपने-अपने बीरबल को ठीक किया था।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में स्वाधीनता-आन्दोलन का चित्रण करते हुए इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया है कि विरोध के लिए एकजुट होना जरूरी है। टुकड़े-टुकड़े में बँटकर बड़ी लड़ाई नहीं जीती जा सकती। अपनी कहानी 'जेल' में वे अपना पूरा परिवार देश को दे चुकी 'मृदुला' से कहलवाते हैं, "लोग कहते हैं, जुलूस निकालने से क्या होता है? इससे सिद्ध होता है कि हम जीवित हैं, अटल हैं और मैदान से हटे नहीं हैं।" (वही, खण्ड-7, पृ. 11) इसी कहानी में प्रेमचंद निर्ममता के साथ लगान वसूली का चित्र खींचकर दिखाते हैं कि अंग्रेज सरकार दिनों-दिन अमानवीय होती जा रही थी। मृदुला जेल में बन्द क्षमा से कहती है, "परसों शहर में गोलियाँ चलीं। देहातों में आजकल संगीनों की नोक पर लगान वसूल किया जा रहा है। ...सरकार को तो अपने कर से मतलब है। प्रजा मरे या जिए, उससे कोई प्रयोजन नहीं।.....भैरोगंज का इलाका लूटा जा रहा है। मरता क्या न करता, किसान भी घर-बार छोड़कर भागे जा रहे हैं। एक किसान के घर में घुसकर कई कांस्टेबलों ने उसे पीटना शुरू किया। बेचारा बैठा मार खाता रहा। उसकी स्त्री से न रहा गया। शामत की मारी कांस्टेबलों को कुवचन कहने लगी। बस, एक सिपाही ने उसे नंगा कर दिया।" (मानसरोवर, खण्ड-7, पृ. 8-9) यह उस दौर का सच था और प्रेमचंद इस सच को चित्रित करके भारतियों को लामबन्द करने की काशिश कर रहे थे। वे अपनी कहानियों के माध्यम से लोगों को साँड नाथने की कला सिखा रहे थे।

प्रेमचंद अपनी कहानियों में स्वाधीनता-आन्दोलन का चित्रण करते हुए दिखा रहे थे कि भारतीय जनता पूर्ण स्वराज चाहती है। उससे कम का कोई समझौता उसे स्वीकार नहीं है।

इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि 1905 ई. की बंग-भंग योजना ने अंग्रेजों के प्रति भारतियों के रहे-सहे विश्वास को भी समाप्त कर दिया। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी कांग्रेसियों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का अखिल भारतीय आन्दोलन चलाया। इसी आन्दोलन की प्रक्रिया में राष्ट्रीय कांग्रेस "गरम" और "नरम" दलों में विभाजित हो गया। नरम दल के लोगों का मानना था कि 'स्वदेशी अपनाओं' का नारा होना चाहिए; जबकि गरम दल ने स्वदेशी के स्वीकार और विदेशी के बहिष्कार दोनों को साथ लेकर चलना ही श्रेयस्कर समझा। यदि इस बँटवारे को अलग करके देखें तो कहना न होगा कि इस आन्दोलन ने भारतीय स्वाधीनता-संग्राम को बहुत बल प्रदान किया। प्रेमचन्द ने अपनी स्वाधीनता आन्दोलन विषयक कहानियों में इस आन्दोलन और इसके प्रभाव का सुन्दर चित्रण किया है।

'सुहाग की साड़ी' शीर्षक कहानी में प्रेमचंद लिखते हैं, "विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रही थीं। स्वयंसेवकों के जत्थे भिखारियों की भाँति द्वार पर खड़े हो-होकर विलायती कपड़ों की भिक्षा माँगते थे। और ऐसा कदाचित ही कोई द्वार था जहाँ उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़े के दिन फिर गए थे। नयनसुख नयनदुख, मलमल मनमल और तनजेब तनबेध हो गए थे।" (वही, पृ. 194) इस कहानी की मार्मिकता उस समय बहुत

बढ़ जाती है, जब रतन सिंह की पत्नी पति के मार्ग पर चलती हुई अपनी सुहाग की साड़ी स्वदेशी आन्दोलनकर्ताओं को दे देती है। गौर किया जाना चाहिए कि एक भारतीय स्त्री के लिए सुहाग की साड़ी सर्वोपरि होती है, लेकिन प्रेमचंद उस दौर की माँग को ध्यान में रखते हुए चित्रित कर रहे थे कि गुलामी के दिनों में आजादी और देश के ऊपर कुछ नहीं होता देश और स्वाधीनता के लिए सुहाग की साड़ी तो क्या सुहाग भी अर्पित किया जा सकता है। प्रेमचंद दिखा रहे थे कि मंगल उद्‌देश्य से किए हुए कार्य का परिणाम अमंगल नहीं हो सकता। गौरा को लगता है कि सुहाग की देवी अश्रुसिंचित नेत्रों से सामने खड़ी आँचल फैलाकर उसे आशीर्वाद दे रही थी।" (मानसरोवर, खण्ड-7, पृ. 200)

'पत्नी से पति' शीर्षक कहानी में भी प्रेमचंद ने विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का प्रभावशाली चित्रण किया है। कहानी की पहली ही पंक्ति में प्रेमचंद लिखते हैं, "मिस्टर सेठ को सभी हिन्दुस्तानी चीजों से नफरत थी और उनकी सुन्दर पत्नी गोदावरी को सभी विदेशी चीजों से चिढ़।" (वही, पृ. 13) इस कहानी में प्रेमचंद ने मिस्टर सेठ को एक हास्यस्पद व्यक्ति के रूप में चित्रित करते हुए लिखा है, "मिस्टर सेठ ने विलायती टूथ पाउडर विलायती ब्रुश से दाँतों पर मला, विलायती साबुन से नहाया, विलायती चाय, विलायती, दूध पिया। फिर विलायती सूट धारण करके विलायती सिगार मुँह में दबाकर घर से निकले और मोटर साइकिल पर बैठकर लावर शो देखने चले गए।" (वही, पृ. 15) और यह सब कुछ मिस्टर सेठ उन दिनों कर रहे थे, जब लाखों भारतीय देश की आजादी के लिए विलायत शब्द से ही नफरत पैदा कर रहे थे। प्रेमचंद ने मिस्टर सेठ को सही रास्ते पर लौटता हुआ दिखाया है। उनकी पत्नी गोदावरी उन्हें जीवन का मंत्र देती है, "बड़प्पन, सूट-बूट और ठाट-बाट में नहीं है। जिसकी आत्मा पवित्र हो, वही ऊँचा है।"20 (वही, पृ. 21)

प्रेमचंद ने अपनी कई कहानियों में स्वयंसेवकों द्वारा पिकेटिंग करने का चित्रण किया है। स्वयंसेवक घर-घर जाकर लोगों को सचेत करने के साथ ही दुकानदारों से भी निवेदन करते थे कि वे अपनी दुकान में विदेशी कपड़े न बेचें। यहाँ 'गबन' के देवीदीन की स्मृति हो आती है, जिसके दोनों पुत्र आन्दोलन में शहीद हो गए हैं। प्रेमचंद ऐसे आन्दोलनों की महत्ता जानते थे। उनकी स्पष्ट समझ थी कि भारतीय समाज को लड़ाई के हर मोर्चे पर एकाग्र होना होगा। विजय के लिए जरूरी होता है कि हम अपने बीच के किसी व्यक्ति की उपेक्षा न करें।

प्रेमचंद की एक कहानी है– 'तावान'। इस कहानी में तावान का चित्रण किया गया है। 'तावान' अर्थात वह दण्ड जो उस दुकानदार को देना ही पड़ता था, जो कांग्रेस द्वारा सील की हुई विदेशी गाँठ को खोलकर कपड़े बेचता था। कांग्रेस वाले ऐसे लोगों की खूब खबर लेते थे। 'तावान' शीर्षक कहानी में एक स्वयंसेविका लाला छकोड़ी लाल से तिरस्कार के साथ कहती है, "....भले आदमी, तुम्हें शर्म नहीं आती कि देश में यह संग्राम छिड़ा हुआ है और तुम विलायती कपड़ा बेच रहे हो, डूब मरना चाहिए। औरतें तक घरों से निकल पड़ी हैं; फिर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती! तुम जैसे कायर देश में न होते तो उसकी यह अधोगति न होती।" (मानसरोवर, खण्ड-1, पृ. 218) लाला पर तावान लगाया जाता है। उसकी आर्थिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी है कि वह तावान देने में असमर्थ हो जाता है। कांग्रेस की अपनी असमर्थता है। वह रियायत नहीं दे सकती। लाला छकोड़ी चिन्तित होता है। उसकी पत्नी कहती है, "और कुछ नहीं है, घर तो है। इसे रेहन रख दो। और अब विलायती कपड़े भूलकर भी न बेचना। सड़ जाँए, कोई परवाह नहीं। तुमने सील तोड़कर यह आफत सिर ली। मेरी दवा-दारू की चिन्ता न करो। ईश्वर की जो इच्छा होगी, वह होगा। बाल-बच्चे भूखों मरते हैं, मरने दो। देश में करोड़ों आदमी ऐसे हैं,

जिनकी दशा हमारी दशा से भी खराब है। हम न रहेंगे, देश तो सुखी होगा।” (वही, पृ. 223) प्रेमचंद इसी प्रकार अपनी कहानियों में स्वाधीनता के मूल्य को स्थापित कर रहे थे।

‘चकमा’ (वही, खण्ड-6, पृ. 158) शीर्षक कहानी में प्रेमचंद ने स्वदेशी आन्दोलन के साथ विश्वासघात का चित्रण किया है। उन्होंने इस कहानी में दिखाया है कि किस प्रकार सेठ चन्दूमल कांग्रेसवालों का विश्वासपात्र बनकर विश्वासघात करता है। कांग्रेस दफ्तर के मंत्री कहते हैं कि पुलिस की ओर से गवाही न देकर सेठ चन्दूमल हमारे मित्र हो गए हैं। अब उनकी दुकान पर स्वयंसेवक बिठाने की जरूरत नहीं है। जबकि इसके ठीक विपरीत चन्दूमल अपने मुनीम से कांग्रसवालों के प्रति घृणित टिप्पणी करता है। वह कहता है, ”.....इन्हें दोस्त बनाने में कितनी देर लगती है। कहिए, अभी बुलाकर जूतियाँ सीधी करवाऊँ। टके के गुलाम हैं, न किसी के दोस्त, न किसी के दुश्मन। सच कहिए, कैसा चकमा दिया है?... वह डाल-डाल चलेंगे, तो मैं पात-पात चलूँगा।” (वही, पृ. 162) कहना न होगा कि इस प्रकार की कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद तत्कालीन समाज में आत्ममूल्यांकन की प्रवृत्ति पैदा करना चाहते थे।

प्रेमचंद का मानना था कि जब अपने देश में कपड़ा बनता है तब भी विदेशी कपड़ा पहनना अपने देश के साथ, अपने लोगों के साथ अन्याय है। अकारण नहीं कि प्रेमचंद ने स्वदेशी आन्दोलन को एक राष्ट्रीय व्रत के रूप में चित्रित किया है। ‘आहुति’ कहानी की नायिका रूपमणि अपने स्वास्थ्य के कारण अपनी पढ़ाई छोड़ देती है, लेकिन स्वराज-आन्दोलन में सहयोग करती है। घण्टों चर्खे पर सूत काटती है। ‘शान्ति’ कहानी की नायिका श्यामा अपने पति से प्रेरणा पाकर आधुनिका हो जाती है, लेकिन आधुनिकता का रहस्य जल्दी ही खुल जाता है। वह पुनः अपने पुराने रूप में लौटकर चर्खा चलाना शुरू कर देती है। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ने उन लोगों पर प्रहार किया है जो चर्खा चलाने को सम्मान की दृष्टि से न देखते थे अथवा वे लोग जो चर्खे को लेकर हीनता बोध से ग्रसित थे।

अपनी कहानियों में स्वाधीनता आन्दोलन का चित्रण करते हुए प्रेमचंद ने शराबबन्दी आन्दोलन को भी खूब महत्व दिया। जिस देश में करोड़ों लोग भूखे सो जाते हों, उसी देश में कुछ लोग सिर्फ नशे के लिए धन का दुरुपयोग करें, यह प्रेमचंद के लिए असह्य था। उन्होंने शराबबंदी आन्दोलन को लेकर सशक्त कहानियाँ लिखीं।

‘दीक्षा’ शीर्षक कहानी में उन्होंने एक वकील के व्यक्तिगत अनुभव को चित्रित किया है और उसके माध्यम से यह रेखांकित करने की कोशिश की है कि शराब व्यक्तिगत और राष्ट्रीय क्षति का कारण होता है।

‘शराब की दुकान’ प्रेमचंद की एक लम्बी कहानी है। इस कहानी में प्रेमचंद ने शराबबन्दी के साथ ही स्त्रियों की उत्सर्ग भावना को चित्रित किया है। समाज में लोग आज भी सोचते हैं कि स्त्रियाँ नशेड़ियों को ठीक नहीं कर सकती हैं। ऐसी सोच पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद ने इस कहानी की नायिका मिसेज सक्सेना से कहलवाया है, ”तो क्या आपका विचार है कि कोई ऐसा जमाना भी आएगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जाएँगे? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आखिर महात्मा जी ने कुछ सोचकर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है।” (मानसरोवर, खण्ड-7, पृ. 23) और अन्त में मिसेज सक्सेना शराब की एक दुकान बन्द कराने में सफल होती हैं। इसके लिए वे अपना रक्त भी बहाती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार मिसेज सक्सेना पुरुष समाज के सामने एक आदर्श उदाहरण बनकर उपस्थित होती हैं।

प्रेमचंद की एक कहानी है 'मैकू'। यह छोटी किन्तु मारक क्षमता वाली रचना है। मैकू नाम का एक पियक्कड़ गुण्डा इस कहानी का नायक है। वह ताड़ीखाने में आता है स्वयंसेवकों को पीटने के लिए, लेकिन उनकी प्रतिबद्धता और उनके आदर्श उसे बदलकर मानवीय गुणों से सम्पन्न बना देते हैं। उसके बदले हुए रूप को देखकर उसका साथी कादिर कहता है, "तू पागल तो नहीं हो गया है बे? क्या करने आया था, और क्या कर रहा है?" (वही, पृ. 46) प्रेमचंद लिखते हैं, "मैकू ने लाल-लाल आँखों से उसकी ओर देखकर कहा- हाँ, अल्लाह का सुक्र है कि मैं जो करने आया था, वह न करके कुछ और ही कर बैठा। तुममें कूवत हो तो बालंटरों को मारो, मुझमें कूवत नहीं है।.....जो लोग दूसरों को गुनाह से बचाने के लिए अपनी जान देने को खड़े हैं, उन पर वही हाथ उठाएगा, जो पाजी है, कमीना है, नामर्द है।" (वही) जाहिर है, प्रेमचंद इस तरह की कहानियाँ लिखकर स्वाधीनता आन्दोलन की व्यापकता का चित्रण कर रहे थे। उनके लिए स्वराज की लड़ाई राजनीतिक लड़ाई के साथ ही सामाजिकता और नैतिकता की भी लड़ाई थी। कहना न होगा कि उन्होंने स्वाधीनता-आन्दोलन के चित्रण में अपनी कला का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया है।

1.4 राष्ट्रवाद का चित्रण

प्रेमचंद भावुकता में बहकर आँसू बहाऊ लेखन करनेवाले लेखक न थे। वे जिस भी विषय को उठाते थे, उसे अपने आलोचनात्मक विवेक से खूब जाँच-पड़ताल कर ही प्रस्तुत करते थे। स्वाधीनता का प्रश्न उनके लिए सबसे बड़ा प्रश्न था। इसीलिए स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण करते हुए उन्होंने लगातार उन विसंगतियों पर प्रहार किया, जो भारतीय राष्ट्रवाद को संकीर्ण बना रही थीं। उन्हेंाने उन मूल्यों का भी बारीक चित्रण किया , जो भारतीय राष्ट्रवाद को व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान कर रहे थे।

प्रेमचंद अपनी कहानियों में राष्ट्रवाद की व्यापकता को चित्रित करते हुए दिखा रहे थे कि धीरे-धीरे लगभग सारा हिन्दुस्तान स्वाधीनता के मुद्दे पर एक हो चुका था। वे अपनी कहानी 'कानूनी कुमार' में अपने देश की कमजोरियों को उजागर कर उसे समाप्त करने के तरीकों का चित्रण करते हैं। इस कहानी में वे स्त्रियों की दयनीय दशा पर प्रकाश डालते हुए उसे बदलने की बात करते हैं। उनकी दृष्टि में बिना स्त्रियों की स्थिति सुधारे हम अपने राष्ट्र का सिर ऊँचा नहीं कर सकते।

'सती' कहानी की नायिका अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के लिए अपनी सेना के साथ रणभूमि में जाती है। उसके इस साहस का चित्रण करके प्रेमचंद दिखा रहे थे कि स्त्रियों को अबला समझना राष्ट्रीय आंदोलन के साथ धोखा करने जैसा होगा।

'समर-यात्रा' शीर्षक कहानी में प्रेमचंद ने भारतीय राष्ट्रवाद की व्यापकता का चित्र खींचा है। इस कहानी में उन्हेंाने इस बात का विस्तार से चित्रण किया है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सही वाहक वे ही लोग हैं, जो सदियों से सामाजिक-आर्थिक रूप से शोषित होते रहे हैं। इस कहानी में उन्होंने इस वर्ग की उत्सर्ग भावना और साहस का प्रभावशाली वर्णन किया है। वे दिखा रहे थे कि किस प्रकार से स्वाधीनता आंदोलन पूरे देश में फैल रहा था।

'आहुति' शीर्षक कहानी में इस बात का चित्रण हुआ है कि किस प्रकार से स्वयंसेवक अपने प्राण हथेली पर लेकर स्वदेशी आंदोलन को आगे बढ़ा रहे हैं। 'पत्नी से पति' कहानी में भी राष्ट्रप्रेम को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है। 'मैकू' शीर्षक कहानी में मनुष्य के बदलते भावों को स्वाधीनता-आंदोलन से जोड़कर एक नया अर्थ देने की कोशिश की गई है।

राष्ट्रवाद की व्यापकता को प्रेमचंद ने जानवरों के माध्यम से भी व्यक्त किया है। 'दो बैलों की कथा' शीर्षक कहानी के बैलों के सत्याग्रह को दिखाकर वे यह सिद्ध कर रहे थे कि इस अस्त्र के द्वारा हम विरोधी को हरा सकते हैं।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में राष्ट्रवाद की व्यपकता को चित्रित करते हुए जिन बातों पर विशेष बल दिया है, उनमें पूर्ण स्वराज की माँग, राष्ट्र को सर्वोपरि समझने की भावना, स्त्रियों-शोषितों की भागीदारी और किसानों का विद्रोह भाव महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद की दृष्टि में उस राष्ट्रवाद में व्यापकता नहीं आ सकती, जो क्षुद्र स्वार्थों को महत्व दे। यह अकारण नहीं है कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद में प्रवेश कर रही संकीर्णता को नजरअन्दाज नहीं किया। प्रेमचंद के सामने यह बिलकुल स्पष्ट था कि जब तक हमारे जीवन मूल्य उदात्त न होंगे, तब तक हम एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण न कर सकेंगे, जिसमें शोषण, दमन और ऊँच-नीच के लिए कोई स्थान न हो।

प्रेमचंद अच्छी तरह जानते थे कि जब तक हम धार्मिक समस्याओं में उलझे रहेंगे, तब तक राष्ट्र की एकता के विषय में हम नहीं सोच पाएँगे। वे अंग्रेजों की उस नीति को भी समझ रहे थे, जिसके तहत अंग्रेज सरकार हिन्दुओं-मुसलमानों को आपस में लड़ाकर स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर करने की साजिश कर रही थी। निश्चित रूप से यही कारण रहा होगा उन कहानियों की रचना के पीछे, जो साम्प्रदायिकता की समस्या पर उनके द्वारा लिखी गई हैं।

प्रेमचंद की एक चर्चित कहानी है– 'हिंसा परमो धर्मः।' इस कहानी में प्रेमचंद ने धर्म-परिवर्तन की समस्या का चित्रण करते हुए साम्प्रदायिकता के विषवृक्ष को बढ़ता हुआ चित्रित किया हैं इस कहानी में हिन्दू, मुसलमानों को हिन्दू बना रहे हैं और मुसलमान, हिन्दुओं को मुसलमान। दोनों वर्ग इस कार्य के लिए भरपूर प्रयास करते हैं। दोनों एक-दूसरे के जान-माल के दुश्मन बने हुए हैं स्त्रियों की इज्जत लूटी जा रही है। प्रेमचंद लिखते हैं, "औरत ने जीना तय करके ज्यों ही छत पर पैर रखा कि काजी साहब को देखकर झिझकी। वह तुरंत पीछे की तरफ मुड़ना चाहती थी कि काजी साहब ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और अपने कमरे में घसीट लाए। ... जामिद यह दृश्य देखकर विस्मित हो गया था। यह रहस्य और भी रहस्यमय हो गया था। यह विद्या का सागर, यह न्याय का भण्डार, यह नीति, धर्म और दर्शन का आगार इस समय एक अपरिचित महिला के ऊपर यह घोर अन्याय कर रहा है।" (मानसरोवर, खण्ड-5, पृ.68) इसी क्रम में प्रेमचंद दिखाते हैं कि धर्मों के ये ठेकेदार धर्म को किस प्रकार से बदनाम करते हैं। यही काजी महोदय उस अनजान औरत से कहते हैं, "हाँ खुदा का यही हुक्म है कि काफिरों को जिस तरह मुमकिन हो, इस्लाम के रास्ते पर लाया जाए। अगर खुशी से न आएँ तो जब्र से।" (वही, पृ. 69) इस कहानी में प्रेमचंद दिखाते हैं कि साम्प्रदायिकता कैसे मानवता पर प्रहार करती है। यह आदमी को टुकड़े-टुकड़े में बाँट देती है। कहानी के अन्त में एक प्रमुख पात्र जामिद के माध्यम से उन्होंने अपनी बात कही है। वे लिखते हैं, "... वह जल्द-से-जल्द शहर से भागकर अपने गाँव पहुँचना चाहता था, जहाँ मजहब का नाम सहानुभूति, प्रेम और सौहार्द था। धर्म और धार्मिक लोगों से उसे घृणा हो गई थी।" (मानसरोवर, खण्ड-5, पृ. 70) कहने की जरूरत नहीं कि यह घृणा प्रेमचंद को स्वयं हुई थी। किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को ऐसी घृणा होनी चाहिए। राष्ट्र को एक होकर मजबूत किया जा सकता है– बँटकर एवं घृणा और द्वेष से नहीं।

'जिहाद' शीर्षक कहानी में भी प्रेमचंद ने धर्मान्धता का चित्रण किया है। उन्होंने दिखाया है कि अज्ञानवश मनुष्य अपने मानव धर्म से किस प्रकार विरत हो जाता है। 'मुक्ति धन' शीर्षक कहानी में उन्होंने दिखाया है कि हिन्दू-मुस्लिम एक दूसरे का आदर करना सीख

गए हैं। "पंच-परमेश्वर" में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम मित्रता का एक आदर्श प्रस्तुत किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेमचंद अच्छी तरह जानते थे कि धार्मिक कट्टरता राष्ट्रवाद को संकीर्ण बनाती है।

स्वाधीनता आंदोलन को सफल और सार्थक बनाने के लिए यह जरूरी था कि लोग धार्मिक कूपमण्डूकता से बाहर निकलें। उनकी गलतियाँ राष्ट्रवाद को संकीर्ण बना रही थीं। यद्यपि कि यह भी एक दुखद सत्य है कि संकीर्ण दृष्टिवाले राष्ट्रवादियों को बहुत सफलता मिली।

प्रेमचंद ने भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में विकसित हो रहे राष्ट्रवाद की संकीर्णता को उजागर करते हुए कई अन्य कहानियाँ भी लिखीं। उनके लिए यह चिन्ता का विषय था कि इस देश के जमींदार, राजे-रजवाड़े और आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग अपने ही गरीब भाइयों के विषय में कुछ नहीं सोचते हैं। वे अपने लेखों में भी अपनी इस चिन्ता को व्यक्त कर रहे थे। जिस 'आहुति' शीर्षक कहानी में उन्होंने स्वयंसेवकों के त्याग का वर्णन किया है, उसी कहानी में उसकी नायिका बेधने वाला प्रश्न खड़ा करती है। वह कहती है, "अगर स्वराज आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व बना रहे और पढ़ा-लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे तो मैं कहूँगी कि ऐसे स्वराज का न आना ही अच्छा है। अंग्रेज महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराईयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं? कम-से-कम मेरे लिए स्वराज का यह अर्थ तो नहीं कि जान की जगह गोबिन्द बैठ जाए। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम-से-कम विषमता को आश्रय न मिल सके।" कहना न होगा कि प्रेमचंद ने यह दृष्टि अपने समय के क्रान्तिकारियों से प्राप्त की थी। सरदार भगत सिंह के विचार भी ऐसे ही थे। प्रेमचंद को यह दृष्टि कितना प्रभावित किए हुए थी, इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपने उपन्यास 'गबन' में भी देवीदीन के माध्यम से यही विचार व्यक्त किया है। प्रेमचंद रूपमणि या देवीदीन से सिर्फ अपना मन्तव्य प्रकट करवाकर ही नहीं छोड़ देते, बल्कि 'ब्रह्म का स्वाँग' कहानी के नायक की सोच के माध्यम से अपने संशयों को आधार भी देते हैं। 'ब्रह्म का स्वाँग' कहानी के नायक दिखावा करते हुए स्त्रियों के राष्ट्रीय संघर्ष में शामिल होने की बात करते हैं। उनकी पत्नी संकीर्ण विचारों की महिला है। वह छूत-छात में विश्वास रखती है। लेकिन जब उसमें परिवर्तन आ जाता है, तब वह अपनी सुध-बुध खोकर देश सेवा में लग जाती है। अछूतों को घर में सम्मान देने लगती है। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि दिखावा करनेवाले पति महोदय को यह अच्छा नहीं लगता। वे सोचते हैं, "वृन्दा सोचती होगी कि भोजन में भेद करना नौकरों पर अन्याय है। कैसा बच्चों जैसा विचार है। नासमझ। यह भेद सदा रहा है और रहेगा। मैं राष्ट्रीय ऐक्स का अनुरागी हूँ। समस्त शिक्षित समुदाय राष्ट्रीयता पर जान देता है किन्तु कोई स्वप्न में भी कल्पना नहीं करता कि मजदूरों या सेवावृत्तधारियों को समता का स्थान देंगे।" (मानसरोवर, खण्ड-8, पृ. 101-102) इस प्रकार प्रेमचंद दिखा रहे थे कि सम्पन्न वर्ग स्वाधीनता आंदोलन में भी राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी रोटी सेंक रहा था। अपने वर्चस्व को कायम रखने की साजिशों में लिप्त था। लेकिन यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि ऐसे संशयों के बावजूद प्रेमचंद स्वाधीनता का हर सम्भव समर्थन करते हैं। शायद एक उम्मीद रही हो कि स्वाधीनता के बाद लोगों के विचार बदलेंगे।

प्रेमचंद इस विडम्बना की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं कि 'बौड़म' कहानी की तरह मालदार लोगों के साथ ही एक बड़ा शोषित हिस्सा भी आजादी के दीवानों को बौड़म

समझता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह बड़ा शोषित हिस्सा मध्यवर्ग ही हो सकता है; जो अपने स्वार्थों के आगे कुछ नहीं देखता और शासकों की फेंकी हुई हड्डी के आगे भागता रहता है। प्रेमचंद की दृष्टि में ऐसी प्रवृत्तियाँ राष्ट्रवाद की व्यापकता को खण्डित करती हैं।

जैसा कि पीछे कहा गया है कि प्रेमचंद जाति व्यवस्था को भारतीय राष्ट्रवाद के लिए घातक मानते थे। उन्होंने कहा भी कि उनका उद्देश्य है जाति व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना। वे दलितों को उनका पूरा-पूरा सम्माान देने के पक्षधर थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि जब तक भारत में जाति व्यवस्था रहेगी, तब तक यहाँ समतामूलक समाज की स्थापना नहीं हो सकती है। और जिस राष्ट्र में समता न हो, वहाँ राष्ट्रवाद व्यापक नहीं हो सकता।

अपनी कहानी 'सौभाग्य के कोड़े' में प्रेमचंद चित्रित करते हैं कि ब्राह्मण होने के लिए ब्राह्मण के घर में पैदा होना जरूरी नहीं है। जिस व्यक्ति में नम्रता, शील, विनय, आचार, धर्मनिष्ठा, विद्या, प्रेम आदि गुण हों वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है। यहाँ प्रसंगवश गोदान में मातादीन की दी हुई जाति की परिभाषा याद आती है। वहाँ भी प्रेमचंद ने मनुष्य के चरित्र को ही उसके मूल्यांकन का आधार स्वीकार किया है।

प्रेमचंद अपनी कहानियों में बार-बार इसका जिक्र करते हैं कि एक स्वस्थ समाज के लिए जरूरी है कि वह आपस में धार्मिक विद्वेष न पैदा करे, क्योंकि धर्म जब आदमी को बिगाड़ता है तो शैतान बना देता है। वे समाज को बार-बार सचेत करते हैं कि अन्धविश्वास और कुरीतियाँ राष्ट्र की प्रगतिशीलता में बाधक हैं। ये व्यक्ति और देश दोनों का अहित करते हैं। अपनी कहानी 'मुक्ति मार्ग' में उन्होंने दिखाया है कि बुद्धू गो-हत्या के प्रायश्चित्त में अपना सर्वनाश कर लेता है।

प्रेमचंद का मानना था कि जिनके हाथ में नेतृत्व है, अगर उनका आचरण दोहरा होगा तो इससे स्वाधीनता-संग्राम को ठेस पहुँचेगी और राष्ट्रवाद के प्रति सन्देह पैदा होगा। एक संघर्ष कर रहे राष्ट्र में नेतृत्व करने वालों के आचरण में गम्भीरता और आदर्श होना चाहिए। अपनी कहानी 'दीक्षा' के नायक वकील साहब के माध्यम से प्रेमचंद यह दिखाने की कोशिश भी करते हैं। वकील साहब नाशा-निवारिणी सभा के उत्साही सदस्य हैं और लोगों को शराब न पीने की सलाह देते हैं। लेकिन स्वयं मन पर नियंत्रण नहीं रख पाते और पीते हैं। पीने के बाद उनकी दुर्गति भी होती है। प्रेमचंद कथनी और करनी की एकता के समर्थक थे।

उन्होंने अपनी कई कहानियों में राष्ट्रवाद की व्यापकता और कई में उसकी संकीर्णता को गम्भीरता से चित्रित किया है।

1.5 स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवाद का अन्तस्सम्बन्ध

प्रेमचंद स्वाधीनता आन्दोलन के साधक थे। उनका लगभग सारा लेखन किसी-न-किसी रूप में मुक्ति-आन्दोलनों से जुड़ा हुआ है। उनकी आकांक्षा थी कि भारतीय स्वाधीन हों और स्वाधीन भारतीय समतामूलक सिद्धान्त पर अपना विकास करें। उन्होंने सन् 1930 ई. में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में यह इच्छा प्रकट की थी कि उनकी प्रबल आकांक्षा है, "हम भारतीय स्वराज-संग्राम में विजयी हों।" (हंस, मई, 1999, पृ. 33)

प्रेमचंद अपने लेखने के माध्यम से स्वाधीनता-संग्राम के एक प्रतिबद्ध सिपाही के रूप में उपस्थित होते हैं। और जैसा कि स्पष्ट है कि जिसे भारतीय राष्ट्रवाद कहा जाता है, वह ठीक-ठीक स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में ही विकसित हुआ। स्वाधीनता आन्दोलन की सफलता के लिए राष्ट्रवाद एक आवश्यक हथियार के रूप में सामने आया था। वह राष्ट्रवाद था कि लाखों-करोड़ों लोग अपना-अपना स्वार्थ छोड़कर 'भारतमाता की जय' का नारा लगाते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। सबके सामने एक ही लक्ष्य था-अपने भारत को मुक्त कराना। स्वाधीनता आन्दोलन के लिए यह आवश्यक था कि वह भारत में रहने वाले लोगों में देश के लिए मर-मिटने का भाव पैदा करे। राष्ट्रवाद ने यही काम किया। और कहा जाए तो अपने इस अर्थ में राष्ट्रवाद ने प्रगतिशील भूमिका का निर्वाह किया।

प्रेमचंद की कहानियों में स्वाधीनता आन्दोलन के चित्रण के साथ-ही-साथ राष्ट्रवाद का भी चित्रण है। कहना चाहिए कि प्रेमचंद की कहानियों में स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवाद एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में चित्रित हैं। जिन कहानियों में प्रेमचंद ने राष्ट्रवाद को कटघरे में खड़ा किया है, उनमें भी स्वाधीनता आन्दोलन ही केन्द्र में है।

प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'पत्नी से पति' में स्वाधीनता -आन्दोलन को बल देने के लिए राष्ट्रवाद का सहारा लिया है। कहानी की नायिका कोशिश करके अपने पति में राष्ट्रीयता का भाव जगाती है। वह उसे लज्जित करते हुए कहती है, "....छोटे-से-छोटे राष्ट्र भी किसी दूसरी जाति के गुलाम बनकर नहीं रहना चाहते। क्या एक हिन्दुस्तानी के लिए यह लज्जा की बात नहीं है कि वह अपने थोड़े से फायदे के लिए सरकार का साथ देकर अपने भी भाइयों के साथ अन्याय करे?" (मानसरोवर, खण्ड-7, पृ. 14) 'जुलूस' के बीरबल सिंह राष्ट्रवादी भाव के पैदा होने पर ही स्वाधीनता संग्राम में शहीद हुए इब्राहिम अली की विधवा से क्षमा माँगने जाते हैं। 'समर-यात्रा' में सत्याग्रहियों द्वारा गाया जाने वाला गीत राष्ट्रवाद की भावना जगाता है। गीत इस प्रकार है-

"एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फर्द थे,

एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।

एक दिन वह था कि अपनी शान पर देते थे जान,

एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।" (वही, पृ. 49)

इस कहानी में 'नोहरी' स्वाधीनता-आन्दोलन की सफलता की कामना करती हुई एक ऐसा चरित्र है, जिसे सहज ही राष्ट्रवादी कहा जा सकता है।

'आहुति' की नायिका ऐसी स्वाधीनता चाहती है, जिससे एक समतामूलक समाज का निर्माण किया जा सके। वह संकीर्ण राष्ट्रवाद का विरोध करती है। कहना न होगा कि इस संकीर्ण राष्ट्रवाद को ही प्रेमचंद ने आधुनिक समाज का कोढ़ कहा था। वे राष्ट्रवाद के प्रति एक आलोचनात्मक नजरिया रखते थे। उनके लिए राष्ट्रवाद वहीं तक श्लाघ्य था, जहाँ तक वह स्वाधीनता आन्दोलन को शक्ति प्रदान कर सके। अपनी कहानियों में उन्होंने अपनी प्रगतिशील सोच को आकार दिया।

1.6 सारांश

इस इकाई में आपने प्रेमचंद की स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ी कहानियों के विश्लेषण के साथ-साथ उनकी राष्ट्रवाद विषयक दृष्टि का भी अध्ययन किया। आपने देखा कि प्रेमचंद

के लिए 'स्वाधीनता' का आशय कितना व्यापक था। वे महज उपनिवेशवाद से मुक्ति को ही स्वाधीनता नहीं समझते थे। बल्कि भारतीय समाज की व्यापक मुक्ति का स्वप्न देखते थे वे एक ऐसा राष्ट्र चाहते थे जो हर प्रकार की गुलामी से मुक्त हो। वे वर्ण व्यवस्था और धार्मिक विद्वेष के कटु आलोचक थे। उन्होंने बराबर पूर्ण स्वराज का ही पक्ष लिया। हिन्दी साहित्य में जब भी स्वाधीनता आन्दोलन का जिक्र आता है, प्रेमचंद सबसे पहले याद आते हैं। उनके पुत्र अमृतराय ने उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन के एक सिपाही के रूप में याद करते हुए ठीक ही 'कलम का सिपाही' कहा है।

1.7 अभ्यास

1. प्रेमचंद की कहानियों में चित्रित स्वाधीनता आंदोलन पर प्रकाश डालिए।
2. प्रेमचंद की राष्ट्रवाद विषयक दृष्टि का विश्लेषण कीजिए।
3. 'प्रेमचंद कलम के सिपाही थे'— इस कथन पर तर्क सहित विचार कीजिए।

इकाई 2 स्त्री जीवन और प्रेमचंद

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 स्त्री शिक्षा का प्रश्न और प्रेमचंद

2.3 स्त्री के अधिकार का प्रश्न और प्रेमचंद

2.4 विधवाओं की स्थिति, विधवा विवाह का प्रश्न और प्रेमचंद

2.5 तलाक का प्रश्न और प्रेमचंद

2.6 स्त्रियों से जुड़ी अन्य समस्याएं और प्रेमचंद

2.7 सारांश

2.8 अभ्यास

2.0 उद्देश्य

यह प्रेमचंद पर केन्द्रित पाठ्यक्रम की दूसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति और प्रेमचंद की स्त्री-दृष्टि से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे। प्रेमचंद का विश्वास था कि जब तक भारतीय समाज स्त्रियों के वास्तविक उत्थान पर ध्यान नहीं देगा तब तक कोई विकास पूरा नहीं हो सकेगा। इसके लिए प्रेमचंद ने व्यापक लेखन किया। इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य उस व्यापक लेखन और उसकी वर्तमान अर्थवत्ता का रेखांकन है। इस इकाई का अध्ययन करते हुए आप यह देख सकेंगे/सकेंगी कि स्त्रियों से जुड़ी समस्याओं के प्रति प्रेमचंद बेहद गंभीर थे।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज में स्त्रियों की समस्याएं हों चाहे दलित समाज की, किसानों की समस्याएं हों, चाहे साम्प्रदायिकता की, प्रेमचंद ने सब पर गम्भीरता से विचार किया है। उनकी स्पष्ट समझ थी कि सिर्फ ऊपरी परिवर्तन से कोई विशेष लाभ नहीं होगा। आपने पिछली इकाई में पढ़ा है कि प्रेमचंद के लिए स्वाधीनता का आशय सिर्फ औपनिवेशिक सत्ता से मुक्त होना नहीं था। वे 'स्वाधीनता' को उसकी पूर्णता में ग्रहण करने वाले रचनाकार थे। यही कारण है कि उन्होंने भारतीय समाज को पीछे ले जाने वाली, सामाजिक विषमता को बढ़ाने वाली, लैंगिक भेद उत्पन्न करने वाली दृष्टियों और विचारों का खण्डन किया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि वे अकेले ऐसे लेखक-चिन्तक हैं, जिन्होंने अपने समय की समस्याओं पर विचार करते हुए भविष्य के विषय में जो बातें लिखीं, वे बहुत हद तक सत्य सिद्ध हुई और हो रही हैं।

2.2 स्त्री शिक्षा का प्रश्न और प्रेमचंद

प्रेमचंद का लेखन सन् 1900 ई. के आस-पास शुरू हुआ और 1936 तक अबोध-गति से

चलता रहा। यह समय भारतीय समाज में स्त्रियों और दलितों के लिए दोहरी गुलामी का समय था। निराला ने ठीक ही लिखा था कि हमारे समाज में स्त्रियाँ दासों की दासियाँ हैं। यह वह समय था, जिसमें स्त्रियाँ एक साथ उपनिवेशवाद और सामन्तवाद की चक्की में पिस रहीं थीं। यह राजनीतिक और सामाजिक दासता का कारुणिक इतिहास है। दुनिया भर के इतिहास में यह खोजना मुश्किल नहीं है कि जो भी समाज गुलाम रहा, उसकी स्त्रियों ने सर्वाधिक दंश झेला। सामन्ती समाज में प्रतिद्वन्द्वी पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए या उसको नीचा दिखाने के लिए उसकी स्त्री का अपहरण सबसे प्रिय अस्त्र था। आज भी इस देश में सामन्ती मानसिकता का अन्त नहीं हुआ है। कश्मीर में हिन्दू स्त्रियों के साथ और गुजरात में मुस्लिम स्त्रियों के साथ हुए दुराचार में इस मानसिकता का ही हाथ है।

इसके लिए प्रेमचंद स्त्री की शिक्षा को बहुत जरूरी मानते थे। दहेज के प्रसंग में लिखते हुए अपने एक लेख में उन्होंने लिखा कि- 'हमें तो इसका एक ही इलाज नजर आता है और वह यह, कि लड़कियों को अच्छी शिक्षा दी जाए और उन्हें संसार में अपना रास्ता आप बनाने के लिए छोड़ दिया जाए, उसी तरह जैसे हम अपने लड़कों को छोड़ देते हैं। उनको विवाहित देखने का मोह हमें छोड़ देना चाहिए और जैसे युवकों के विषय में उनके पथभ्रष्ट हो जाने की परवाह नहीं करते, उसी प्रकार हमें लड़कियों पर भी विश्वास करना चाहिए।' (विविध प्रसंग, भाग 3, सम्पादक अमृत राय, पृ. 260, 'एक दुःखी बाप') यहाँ दो बातें बिल्कुल साफ हैं– एक तो दहेज जैसी अमानवीय प्रथा से उत्पन्न क्षोभ और उसको सदा के लिए समाप्त करने का संकल्प-मार्ग, और दूसरा सदियों से पुरुष स्त्री को सिर्फ घर के भीतर रहने वाली चीज के रूप में देखते और उनकी शारीरिक कमजोरी का बहाना करते रहे हैं। पुरुष को सदा से लगता रहा है कि 'स्त्री अबला है। वह कोमलांगी होती है। बाहर का संसार उसके लिए ठीक नहीं होता है।' कहने का आशय यह कि लंबे समय से स्त्री के मन और तन की कोमलता को पुरुष ने अपने एकाधिकार के लिए हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। उसे बराबर डर लगता रहा है कि उसके साम्राज्य को स्त्रियाँ जीत न लें और इसके लिए उसे स्त्रियों का बाहर की दुनिया में प्रवेश निषिद्ध कर देना सबसे उचित जान पड़ा। जब चाहा, जहाँ चाहा, जिस खूँटे में चाहा, लड़की को बाँध दिया। लड़की को 'उफ' तक कहने का सामाजिक अधिकार नहीं। प्रेमचंद अच्छी तरह जानते थे कि 'स्त्री और पुरुष का भेद प्राकृतिक से अधिक सांस्कृतिक है।' (प्रो. मैनेजर पाण्डेय) दुनिया में पुरुष को कहने और करने दोनों का अधिकार प्राप्त है। स्त्रियों को ही 'बन्दीजन' की तरह रहना पड़ता है।

स्त्री शिक्षा पर प्रेमचंद ने अपने एक अन्य लेख 'कुमारी शिक्षा का आदर्श' में लिखा है कि– 'मुश्किल तो यह है कि पुरुषों ने महिलाओं को इतना सताया है कि अब वे माताएँ और गृहिणी न बनकर अपनी आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने पर तुली हुई हैं। अगर पुरुष बच्चे पालना और भोजन पकाना नहीं जानते, तो स्त्री क्यों सीखें। जो विद्या पढ़कर पुरुष रोटी कमाता है, और इसीलिए औरतों को अपनी लौंडी समझता है, वही विद्या स्त्रियाँ भी सीखना चाहती हैं। वह खाना क्यों पकाएँ, वकालत क्यों न करें, अध्यापिका क्यों न बनें? इसका फैसला हमारी देवियों को ही करना चाहिए कि उनकी कन्याएँ कैसे शिक्षा पाएँ, स्वार्थी पुरुषों का फैसला वह क्यों मंजूर करने लगीं।' (विविध प्रसंग, भाग 3, पृ. 266) यह प्रेमचंद की विस्तृत जीवन-दृष्टि का एक जोरदार उदाहरण है। प्रेमचंद की स्पष्ट धारणा थी कि लड़कियों को जीवन के तमाम अधिकार मिलने चाहिए। उनकी दृष्टि में लड़की की राय जाने बिना या दहेज न दे पाने की मजबूरी में किया हुआ बेमेल विवाह 'निर्मला' की नियति प्राप्त करता है अथवा 'रूपा' की स्थिति में चलता जाता है। दहेज रूपी

कुव्यवस्था पूंजीवाद की ही देन है। यद्यपि सामन्ती दौर में भी इसका प्रचलन था, लेकिन पूंजी के जोर ने इसे और अधिक विकृत बना दिया है।

2.3 स्त्री के अधिकार का प्रश्न और प्रेमचंद

प्रेमचंद को बराबर लगता रहा कि पुरुष और स्त्री के अधिकारों में बहुत असमानता है। पुरुष का स्त्री के बिना काम भी नहीं चल सकता और वह उस पर जोर आजमाना भी नहीं भूलता है।

भारत में प्रेमचंद ऐसी ही जागृति के लेखक हैं। फरवरी 1931 में लिखे अपने एक लेख 'नारी-जाति के अधिकार' में उन्होंने लिखा–'पुरुषों ने नारी-जाति के स्वत्वों का अपहरण करना शुरू किया, लेकिन राष्ट्रीयता और सद्बुद्धि की जो लहर इस समय आई हुई है, वह इन तमाम भेदों को मिटा देगी और एक बार फिर हमारी माताएँ उसी ऊँचे पद पर आरूढ़ होंगी जो उनका हक़ है।' (वही, पृ. 249)

अपने इसी लेख में वे स्त्रियों के असन्तोष को उन्हीं की इच्छानुसार शमन करने की बात करते हैं और कुछ मुद्दे सुझाते हैं–

1. एक विवाह का नियम स्त्री-पुरुष दोनों ही के लिए समान रूप से लागू हो। कोई पुरुष पत्नी के लिए जीवन-काल में दूसरा विवाह न कर सके।

2. पुरुष की सम्पत्ति पर पत्नी का अधिकार हो। वह उसे रेहन-वाय जो कुछ चाहे कर सके।

3. पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों-पुत्रियों का समान अधिकार हो।

4. तलाक कानून जारी किया जाए और स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान अधिकार हो।

5. तलाक के समय स्त्री-पुरुष की आधी सम्पत्ति पाए और यदि मौरूसी जायदाद हो, तो उसका एक अंश।

यहाँ पर रेखांकित करने योग्य है कि सन् 1931 के समाज में ये बातें कितनी महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी थीं। प्रेमचंद की बातों को पढ़-सुनकर पुरुष वर्ग कितना खलबलाया होगा, इसकी कल्पना कठिन नहीं। सिवाय तत्कालीन स्त्री-आन्दोलनों (स्त्री आन्दोलन-रामेश्वरी नेहरू के 'स्त्री-दर्पण' और तब की 'गृहलक्ष्मी' पत्रिकाओं में छपे लेख) के किसी और लेखक में यह वैचारिक स्पष्टता नहीं दिखती है। यह सुखद है कि तब भी अपने और अपने-जैसों के अधिकारों के लिए लड़ने वाली स्त्रियाँ मौजूद थीं। प्रेमचंद पर भी इन स्त्रियों के आन्दोलन और लेखन का प्रभाव अवश्य है। क्योंकि स्त्री-दर्पण और गृहलक्ष्मी जैसी पत्रिकाएँ स्त्रियों में चेतना जगाने के साथ स्त्री-संगठनों को खड़ा करने की भी बात करती थीं। 'गोदान' में जागरूक स्त्रियों की मीटिंग (गोष्ठी) और 'मीटिंग' (गोष्ठियों) में होने वाले भाषण देखे जा सकते हैं।

2.4 विधवाओं की स्थिति, विधवा विवाह का प्रश्न और प्रेमचंद

प्रेमचंद युग में विधवाओं की बड़ी दयनीय दशा थी। एक तो स्त्री, ऊपर से विधवा भी। बेचारी ऐसी स्त्री पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता था। अपने को सभ्य कहने वाले लोग अपने

'तानों' (व्यंग्य-बाणों) से उस दुःखी स्त्री का हृदय छलनी कर देते हैं। बहुत कुछ बदलने के बाद भी, आज भी यह समाज विधवाओं, ख़ासकर युवावस्था में हुई विधवाओं, के प्रति सहानुभूति तो रखता है, लेकिन सहानुभूति का व्यवहार नहीं करता। प्रेमचंद का संवेदनशील हृदय स्त्री की सोचनीय दशा से बहुत आहत था। अमृत राय ने लिखा है– 'अन्याय का नाम लेते ही उनका ध्यान सबसे पहले स्त्री जाति पर जाता हैं सबसे ज्यादा जुल्म का शिकार कौन। कहने के लिए औरत-मर्द बराबर हैं। सब ढकोसला है। औरत मर्द के पैर की जूती हैं बाकी सब कलई -मुलम्मा है।' (प्रेमचंद की प्रासंगिकता, पृ. 56) स्त्री के विषय में अपने समय में ऐसी बेजोड़ समझ रखने वाले प्रेमचंद ने जुलाई 1933 में एक टिप्पणी लिखी– 'अभागिन विधवा'। इस टिप्पणी में उन्होंने अपना प्राण देने को उद्धत 'बाल विधवा का कथन उद्धृत किया है। वह कहती है-'मैं बाल विधवा हूँ। मैं जिन्दगी से तंग आ चुकी हूँ। इस दुनिया में नहीं रहना चाहती। तुम लोग मुझे क्यों तंग करते हो, मुझे मर जाने दो।' (विविध -प्रसंग, भाग 3, पृ. 475)

एक तो बाल विवाह, ऊपर से वैधव्य का ताना। प्रेमचंद दोनों पर टिप्पणी कर जाते हैं और अक्टूबर 1933 में लिखी टिप्पणी 'विधवाओं के गुजारे का बिल', में साफ-साफ लिखते हैं–'हिन्दू समाज के पतन का मुख्य कारण अगर जाति भेद है तो विधवाओं की दुर्दशा भी उसका खास सबब है।' (वहीं, पृ. 264) इसी टिप्पणी में वे आगे लिखते हैं– 'विधवाओं के साथ समाज ने बड़ा अन्याय किया, और अन्याय को पाल कर कोई समाज सरसबा नहीं हो सकता।' (वही, पृ. 264) इस टिप्पणी में वे अपने समय में आए महत्वपूर्ण 'शारदा-बिल' का समर्थन करने की अपील करते हैं, जिससे विधवाओं के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हो सके और वे मनुष्य जैसा जीवन जी सकें। प्रेमचंद विधवाओं के प्रति अपनी समझ और सहृदयता का परिचय देते हुए ही अपनी कहानियों और उपन्यासों में विधवा-जीवन का मार्मिक चित्रण करते हैं, ताकि समाज की इस हृदयहीनता से घृणा की जा सके। 'वरदान' नामक उपन्यास में बृजरानी (विरजन) का पति मर जाता है। पति की मृत्यु के कुछ समय बाद ही उसके श्वसुर को मार डालता है। उसकी सास इन दोनों की मृत्यु को बृजरानी से जोड़ती है। उसका मानना है कि इसके चरण शुभ नहीं हैं। वह कहती है-'तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। मैं क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ हैं।' (वरदान-प्रेमचंद रचनावली, भाग 1, पृ. 475) आज भी ऐसी अवस्था में युवा-विधवाओं को ऐसे व्यंग्य बाण सहने पड़ते हैं। एक तो 'प्रिय' गया और उस पर से समाज का उलाहना। प्रेमचंद भारतीय समाज की इन मनोवृत्ति को खूब गहराई तक समझते थे। 'निर्मला' में मुंशी तोताराम अपनी सगी बहन के विषय में कहते हैं–'मैंने तो सोचा था कि विधवा है, अनाथ है, पाव भर आटा खाएंगी, पड़ी रहेगी। जब नौकर-चाकर खा रहे हैं, तो यह तो अपनी बहन ही है। लड़कों की देखभाल के लिए एक औरत की जरूरत भी थी, रख लिया। लेकिन इसके यह माने नहीं कि वह तुम्हारे ऊपर शासन करे।' (निर्मला, पृ. 38) 'विधवा' होने के बाद अपने सगे भाई की दृष्टि में रुक्मिणी अनाथ हो जाती है और उसे उनके वहाँ इसलिए जगह मिलती है, क्योंकि बच्चों की सेवा के लिए औरत रखनी ही थी। 'गबन' में सरला रतन के साथ भी कुछ ऐसा ही घटित होता है। पति के मरते ही भतीजा मणिभूषण सारी सम्पत्ति पर कब्जा कर लेता है। वह सरला रतन से कहता है -'...........सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता, ...अगर चाचाजी अपनी सम्पत्ति आप को देना चाहते, तो कोई वसीयत अवश्य लिख जाते.........आज आप को बंगला खाली करना होगा। मोटर और अन्य वस्तुएँ भी नीलाम कर दी जाएँगी। आपकी इच्छा हो, मेरे साथ चलें या यहाँ रहें। यहाँ रहने के लिए आप को दस-ग्यारह रुपये का मकान काफी होगा। गुजारे के लिए पचास रुपये का प्रबंध मैंने कर दिया है।' (गबन पृ. 303) पति के मरते ही पत्नी को यह समाज दो कौड़ी का बना देता है। रतन को कुछ भी नहीं सूझता, वह पूछती है– 'मगर ऐसा कानून बनाया

किसने? क्या स्त्री इतनी नीच, इतनी तुच्छ, इतनी नगण्य है?.........पति के जीवन में जो लोग मुँह ताकते थे, वे आज इसके भाग्य विधाता हो गए।' (वहीं, पृ. 303-304) प्रेमचंद के समय में आधी-आबादी के विषय में समाज का यही रवैया था। इसीलिए प्रेमचंद ने 'पति की सम्पत्ति पर पत्नी के पूरे अधिकार' का पक्ष लिया। शारदा बिल का समर्थन किया। वे जानते थे कि इससे कम पर कोई न्याय नहीं हो सकता था। उन्होंने अपनी एक कहानी 'बेटों वाली विधवा' में भी पति की मृत्यु के बाद फूलमती की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। उसके पुत्र कहते हैं– 'कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक़ केवल रोटी कपड़े का है।' (बेटों वाली विधवा, मानसरोवर, भाग 1, पृ. 48) बेटे अपने अत्याचार को कानून का नाम देते हैं। प्रेमचंद इस समाज को खूब पहचानते थे। इसीलिए उपेक्षा के इस षड्यन्त्र का जैसा पर्दाफास वे कर सके हैं, वह दुर्लभ है।

प्रेमचंद विधवाओं के विषय में इस समाज की एक और सच्चाई को पकड़ते हैं। वे पाते हैं कि जिन्हें समाज अछूत या निम्न श्रेणी का मानता है, उनके वहाँ विधवाओं की स्थिति सवर्ण और सभ्य (?) कहलाने को लालायित लोगों के वहाँ से अच्छी हैं उन्होंने 'स्वामिनी' शीर्षक कहानी में चित्रित किया है कि रामप्यारी का ससुर अपने बेटे की मृत्यु के बाद अपनी पतोहू रामप्यारी के दुःख को शिद्दत से महसूस करता है ओर उसे घर की मालकिन बना देता है। यद्यपि वह नहीं चाहती है फिर भी। वह सोचता है, इसी बहाने उसका दुःख अगर कम नहीं होगा तो बढ़ेगा भी नहीं। इसी प्रकार 'आधार' शीर्षक कहानी में नायिका अनूपा पति की मृत्यु के बाद सुसराल में प्रेम और स्नेह पाने के कारण अन्यत्र शादी करने से इन्कार कर देती है। यहाँ ससुराल का अच्छा व्यवहार महत्वूपर्ण है। उसका अन्यत्र विवाह न करना एक दूसरा प्रश्न है। प्रेमचंद अपनी रचनाओं में इस प्रश्न के सकारात्मक उत्तर के साथ उपस्थित हैं। हमारे समाज में प्रेमचन्द युग से लेकर तमाम घरों में आज तक विधवा को किसी शुभ-कार्य में सम्मिलित नहीं होने दिया जाता है। उसकी छाया से सुहागिनें बचना चाहती हैं। उनके आचरण से लगता है, जैसे विधवा उनका सौभाग्य खा जाएगी। 'धिक्कार' शीर्षक कहानी में नायिका मानी, जो कि बाल विधवा है, अपनी चचेरी बहन को उसके विवाह के दिन दुल्हन के रूप में देखने के लिए प्रेम और उत्सुकता से उसके कमरे में पहुँचती है। उसके पहुँचते ही उसकी चाची का पारा चढ़ जाता है। वे कहती हैं– 'तुझे यहाँ किसने बुलाया था, निकल जा यहाँ से।' (धिक्कार, मानसरोवर, भाग 1, पृ. 216) मानी पर इसका घातक प्रभाव पड़ता हैं सोलह-सत्रह वर्ष की वह लड़की, जिसके हँसने-खेलने के दिन थे, विधवा बन कर धिक्कार और अपमान सहती है। प्रेमचंद इस समाज के खोखलेपन को उजागर कर रहे थे। वे चित्रित कर रहे थे कि यह समाज कितना अपराधी है जो एक ओर बाल-विवाह करता है और दूसरी ओर विधवा हो जाने पर उसका जीवन दूभर कर देता है। 'प्रतिज्ञा' की नायिका विधवा पूर्णा अपने आश्रयदाता बदरी प्रसाद के पुत्र कमला प्रसाद की वासनामय दृष्टि से किसी प्रकार बच पाती है। जवान विधवा कि लिए उसकी देह और उसका यौवन भी अभिशाप की तरह होता है। तब यह समाज जवान विधवा का पुनर्विवाह होने नहीं देता था और उसे शान्ति से जीने भी नहीं देता था। प्रेमचंद स्त्री की इस व्यथा से परिचित थे। तभी तो उन्होंने विधवा-विवाह का घनघोर पक्ष लिया।

'प्रतिज्ञा' में जब कमलाप्रसाद पूर्णा के साथ बलात्कार करना चाहता है तो वह उसका सिर फोड़कर वनिताश्रम पहुँचती है। कई लोग उससे विवाह करना चाहते हैं। वनिताश्रम के संस्थापक अमृत राय उसके संबंध में अपनी राय रखते हैं- 'उसकी विवाह करने की इच्छा हो, तो एक-से-एक धनी-मानी वर मिल सकते हैं। दो-चार आदमी तो मुझी से कह चुके हैं। मगर पूर्णा से कहते हुए डरता हूँ कि कहीं बुरा न मान जाए। प्रेमा उसे ठीक कर

लेगी।' (प्रतिज्ञा, प्रेमचंद रचनावली, भाग 4 पृ.) यहाँ प्रेमचंद बहुत साफ तौर पर विधवा-विवाह का समर्थन करते हैं। ऐसे ही 'नागपूजा' कहानी में समाज के घनघोर विरोध के बावजूद तिलोत्तमा के पिता जगदीशचन्द्र उसका पुनर्विवाह कर देते हैं। प्रेमचंद ने लिखा है -'यह केवल तिलोत्तमा का पुनः संस्कार न था, बल्कि समाज-सुधार का क्रियात्मक उदाहरण था। (नागपूजा, मानसरोवर, भाग 7, पृ. 294) प्रेमचंद की सुधारवादी चेतना में वह समाजिक अलोचना निहित है जो खोखली मर्यादाओं पर टिके समाज की असलियत जानने के लिए प्रतिबद्ध है।' (परमानन्द श्रीवास्वत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित सेवासदन की भूमिका, पृ. 6) यहाँ विधवा-विवाह के पक्ष में महात्मा गांधी के विचारों को देखा जा सकता है। उन्होंने लिखा है– '...विधवा स्त्री को पुनर्विवाह का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को। स्वेच्छा से वैधव्य हिन्दू समाज का अमूल्य वरदान है, परन्तु ऊपर से लादा हुआ वैधव्य अभिशाप है और मुझे विश्वास है कि हिन्दू विधवाएँ जनमत के भय से मुक्त हों, तो वे बिना हिचक के पुनर्विवाह कर लेंगी। ....यह किसी संस्था का काम नहीं, बल्कि व्यक्तिगत सुधारकों तथा इन विधवाओं के सम्बन्धियों द्वारा किया जाने वाला कार्य है। ....जब विधवाएँ बड़ी हो जाएँ और विवाह नहीं करना चाहें, तो उनको केवल यही करना चाहिए कि कुमारी कन्याओं की ही तरह के विवाह करने को स्वतंत्र हैं।' (महात्मा गांधी-स्रोत-इन्द्रकमार सिन्हा की पुस्तक-प्रेमचंदयुगीन भारतीय समाज, पृ. 284) गांधी जी आगे लिखते हैं–'मेरा विश्वास है कि जो लड़की 10-15 साल की अवस्था में अपनी सम्मति दिए बिना ही ब्याही जाए और जो कभी अपने पति के साथ न रही हो, और एकाएक विधवा घोषित कर दी जाए, वह विधवा नहीं है।' (वही) यहाँ गांधी जी के विचार हिन्दू समाज पर केन्द्रित हैं। सच्चाई भी यही है कि विधवा की समस्या सर्वाधिक जटिल इसी समाज में रही है। सम्भवतः यही कारण है कि प्रेमचंद विधवाओं के विषय में भारतीय समाज की समीक्षा करने के लिए हिन्दू समाज को ही चुनते हैं। उनकी विधवाएँ इसी समाज की हैं। वे आजीवन इस समाज को खरी- खोटी सुनाकर रास्ते पर लाने की कोशिश करते रहे।

2.5 तलाक का प्रश्न और प्रेमचंद

कहा जाता है कि हमारे देश में 'तलाक' की अवधारणा नहीं थी। लेकिन इस प्रश्न का उत्तर क्या होगा कि हमारे देश में विवाह के बाद पत्नी को छोड़ने की परम्परा बहुत पुरानी है। जब जी चाहा, कोई भी मिथ्या कारण बताकर पत्नी को घर से निकाल दिया। मिथकों, लोक-कथाओं, लोकगीतों और यहाँ तक कि पुत्र प्राप्ति पर गाए जाने वाले सोहर में भी हम अपने समाज की इस पतित मानसिकता को रेखांकित कर सकते हैं। आज भी गाँवों में लोग बिना अदालत गए पत्नियों को कुलटा-भ्रष्टा-बांझ-कुरूप आदि कहकर छोड़ देते हैं। पुरुष में ये बुराइयाँ ऐसों की नज़र में विशेषता है। छोड़ी हुई स्त्रियाँ इधर-उधर, दर-ब-दर भटकती हैं। ऐसे में शिक्षा के प्रसार के बाद यहाँ 'तलाक' जैसे नियम का आना एक जरूरी घटना थी। इस नियम ने एक ओर जहाँ पुरुष की लम्पटता पर लगाम लगाने की कोशिश की, वहीं दूसरी ओर उन स्त्रियों को बल दिया, जो परित्यक्ता हो रही थीं। प्रेमचंद युग ही 'तलाक-बिल' का प्रत्यक्षदर्शी है। उसका समर्थन और उसका विरोध उसकी पुतलियों में अटका पड़ा है। चूँकि प्रेमचन्द अपने समय में स्त्री-मुद्दे पर सर्वाधिक गम्भीता से विचार करने वाले लेखक थे, इसलिए इस विषय पर भी उन्होंने गम्भीरता से लिखा है। फरवरी 1931 में लिखी अपनी टिप्पणी 'नारी जाति के अधिकार' (विविध प्रसंग, भाग 3, पृ. 250 (पृ. 13 पर पूरा कथन उद्धृत) में उन्होंने स्त्री-पुरुष में असमानता मानने वाली मानसिकता पर दुःख प्रकट करने के साथ ही तलाक को उन्होंने स्त्री-पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू करने की बात की। इसी में उन्होंने यह भी कहा कि तलाक के

समय स्त्री पुरुष की आधी जायदाद पाए और यदि मारुसी जायदाद हो तो उसका एक अंश।

अपनी दूसरी महत्वपूर्ण टिप्पणी 'सर हरिसिंह गौड़ का तलाक-बिल' में उन्होंने इस समस्या पर तीक्ष्ण विवेचन किया है। उन्होंने अपने समाज की नब्ज पर हाथ रखते हुए लिखा है -'स्त्री में रूप न हो, वह फूहड़ हो, उसके संतान न होती हो, या किसी कारण-वश उससे असन्तुष्ट हों, तो उसके लिए रास्ता साफ है। लेकिन पुरुषों में कितनी ही बुराईयाँ हों, स्त्री के लिए कहीं शरण नहीं। यह एकतरफी नीति बहुत दिन तक चली, लेकिन अब नहीं चल सकती।' (वही, पृ. 257) प्रेमचंद 'गोदान' में इसका एक उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। रायसाहब की बेटी मीनाक्षी अपने पति के दुराचरण की वजह से उससे तलाक लेती है और गुजारे का दावा भी करती है। प्रेमचंद ने लिखा है– 'गुजारे की मीनाक्षी को जरूरत न थी। मैके में वह बड़े आराम से रह सकती थी, मगर वह दिग्विजय सिंह के मुँह में कालिख लगाकर यहाँ से जाना चाहती थी।' (गोदान, पृ. 269) कहने का आशय यह कि मीनाक्षी का यह दावा स्त्रियों में आ रही चेतना का सूचक था। पति को उसकी लम्पटता के बाद भी आसानी से छोड़ देना, समाज में अत्याचार और असमानता को बढ़ावा देने जैसा ही होता है। ख़ासकर तब तो और भी जब कानून आपके साथ हो।

प्रेमचंद स्त्रियों के साथ हुए और हो रहे अत्याचार को देखते हुए तलाक बिल का समर्थन तो करते हैं, लेकिन अपने कथा-साहित्य में इस बात पर ही ज्यादा जोर देते हैं कि विवाह का रिश्ता जीवन-पर्यन्त बना रहे, इससे अधिक सुखद कुछ नहीं हो सकता। वे इसी टिप्पणी में आगे लिखते हैं– 'हिन्दू विवाह का आदर्श बहुत ऊँचा है। हिन्दू-विवाह और तलाक दो परस्पर विरुद्ध बातें हैं, लेकिन इस आदर्श का मूल्य बहुत कम हो जाता है, जब उसके पालन का भार केवल स्त्रियों पर रख दिया जाता है। विशेषकर जब हिन्दू देवियाँ खुद इस बिल की माँग पेश कर रही हैं तो पुरुषों को उसे स्वीकार करने के सिवा और कोई मार्ग नहीं रह जाता।' (विविध प्रसंग, भाग 3, पृ. 258) प्रेमचंद ने तलाक के विषय में अपनी इस टिप्पणी में सूक्ष्म विवेचन करते हुए स्त्री-पुरुष संबंध की एक नई परिभाषा दी है-'ज्यों-ज्यों उनमें (स्त्रियों में) शिक्षा का प्रचार हो रहा है, उनमें अपनी वर्तमान अधोगति से विद्रोह उत्पन्न हो रहा है और तलाक की माँग उसी विद्रोह का सूचक है। पुरुषों को अब उनसे समझौता करना होगा। उनकी शिकायतों की अवहेलना करके अब वे अपने पुरुषत्व को कलंक से नहीं बचा सकते।' (वही, पृ. 358) यहाँ 'कर्मभूमि' उपन्यास में नैना और सुखदा का संवाद उल्लेखनीय है–

नैना सुखदा से कहती है– 'तुम कहती हो, पुरुष के आचार-विचार की परीक्षा कर लेनी चाहिए। क्या परीक्षा कर लेने पर धोखा नहीं होता? आए दिन तलाक क्यों होते रहते हैं?'

सुखदा बोली– 'तो इसमें बुराई क्या है? यह तो नहीं होता कि पुरुष गुलछर्रे उड़ाए और स्त्री उसके नाम को रोती रहे।'

नैना ने जैसे रटे हुए वाक्य को दुहराया -'प्रेम के अभाव में सुख कभी नहीं मिल सकता। बाहरी रोकथाम से कुछ न होगा।' (कर्मभूमि, पृ. 113)

सुखदा के इस कथन को आधार मिलता है 'गोदान' की मीनाक्षी में। यद्यपि स्वयं सुखदा इसी उपन्यास में आगे चल कर अपने को दुख के बाद भी 'बंधन' में डाले रहना सुखकर बताती है। उसका पति अमर उसकी जिन्दगी में लौट भी आता है। लेकिन सुखदा का ऊपर का कथन बीसवीं सदी के तीसरे दशक की एक शिक्षित युवती के विक्षोभ का यथार्थ है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि प्रेमचंद स्त्री की मुक्ति के लिए, उसके

अधिकार के लिए, विषम परिस्थितियाँ आने पर तलाक का पक्ष लेते हैं लेकिन अपने विस्तृत कथा-साहित्य में वे यही चित्रित करना चाहते हैं कि स्त्री-पुरुष इस प्रकार एक दूसरे के विश्वास को बचाते हुए जीवन यापन करें कि 'तलाक' की स्थिति ही न आए। प्रेमचन्द ही क्यों, किसी भी संवदेनशील मनुष्य के लिए विवाह जैसे रिश्ते का टूटना सुखद नहीं हो सकता। पति से आहत ('सोहाग का शव' की नायिका) सुभद्रा पति की दलील को काटते हुए कहती है– 'क्षमा कीजिए मि. केशव, मुझमें इतनी बुद्धि नहीं कि इस विषय पर आप से बहस कर सकूँ। आदर्श समझौता वही है, जो जीवन-पर्यन्त रहे। मैं भारत की नहीं कहती। वहाँ तो स्त्री पुरुष की लौंडी है, मैं इंग्लैण्ड की कहती हूँ। यहाँ भी कितनी ही औरतों से मेरी बातचीत हुई है। वे तलाकों की बढ़ती हुई संख्या को देखकर खुश नहीं होतीं। विवाह का सबसे ऊँचा आदर्श उसकी पवित्रता और स्थिरता है।' (प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज, इन्द्र कुमार सिन्हा, पृ. 269) इस आखिरी वाक्य में प्रेमचंद का घनघोर विश्वास है। होना भी चाहिए। विवाह महज सामाजिक-आर्थिक समझौता नहीं होता, इससे कहीं ज्यादा वह एक आत्मिक समझौता भी होता है और इस आत्मिक समझौते को पति-पत्नी अपनी उपेक्षा से तोड़ दें, यह आने वाली संततियों के हित में अच्छा नहीं होता। ऐसे दम्पति जो बाल-बच्चेदार हैं, उनके वहाँ तो बच्चों का जीवन अधर में पड़ जाता है। वे जिस सामाजिक-मानसिक अवस्था से गुजरते हैं, उसकी कल्पना भर की जा सकती है। वैसे इसके उदाहरण भी उपलब्ध हैं। मन्नू भण्डारी का चर्चित उपन्यास 'आपका बंटी' इस समस्या पर गहराई से लिखा गया एक मार्मिक उपन्यास है। मून्नू जी से लगभग तीन दशक पूर्व प्रेमचन्द ऐसी ही समस्याओं की कल्पना से चिन्तित होकर 'तलाक' की समस्या से यथासंभव बचने की बात करते हैं। वे तलाक की उपयोगिता और उससे उत्पन्न दुःख दोनों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करते हैं। अपने एक पत्र में वे इन्द्रनाथ मदान को लिखते हैं– 'अपने अच्छे से अच्छे से रूप में विवाह भी एक प्रकार का समझौता और समर्पण है। यदि कोई सुखी होना चाहते हैं तो उन्हें एक दूसरे का लिहाज करने के लिए तैयार रहना चाहिए।' आगे इसी पत्र में लिखते हैं–'जब इस बात का निश्चय ही नहीं कि तलाक हमारी वैवाहिक बुराइयों को दूर करेगा, मैं इसे समाज पर लादना नहीं चाहता। हाँ कुछ मामलों में तलाक आवश्यक हो जाता है। लेकिन मेरी समझ में झगड़े की जड़ एक-दूसरे की उपेक्षा को छोड़कर और कोई नहीं है।' (26 दिसंबर 1934 को लिखा पत्र। स्रोत-इन्द्र कुमार सिन्हा की पुस्तक-प्रेमचंदयुगीन भारतीय समाज, पृ.269 और 271) । प्रेमचंद इस उपेक्षा नामक खतरनाक बीमारी को जड़ से खत्म करने का पक्ष लेते हैं। वे इस बात को जानते थे कि भारतीय समाज की सर्वमुखी उन्नति के लिए पति-पत्नी में 'विश्वास' नामक तत्व का होना सबसे जरूरी है, क्योंकि समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई परिवार पति-पत्नी के आपसी प्रेम से ही अस्तित्व में आता और फलता-फूलता है।

2.6 स्त्रियों से जुड़ी अन्य समस्याएं और प्रेमचंद

प्रेमचंद स्त्रियों के खरीदे और बेचे जाने से व्यथित रहते थे। उन्होंने वेश्या समस्या पर गंभीरता से विचार किया है। 'वेश्या' नामक कहानी में प्रेमचंद इस पेशे के लिए पुरुषों को जिम्मेदार ठहराते हुए मानते हैं कि इसकी शुरूआत पुरुषों ने ही की होगी। किसी भी समाज को पतन की ओर ले जाने के लिए यह पर्याप्त है कि उस समाज में स्त्री पुरुषों की काम-तृप्ति के लिए वेश्या बन जाएं। 'वेश्या' की नायिका माधुरी कहती है–'नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा कर रही हो, तो समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय, और कोई आधार नहीं है।' यहाँ एक और सामाजिक तथ्य का उद्घाटन होता है। नारी महज पैसे के लिए इस व्यापार में नहीं आ सकती। मूल कारण हो जाता है उसका समाज में आधारहीन होना। यह

आधारहीनता और पुरुष वर्ग की कामोदीप्त निगाहें जीविकोपार्जन के लिए उन्हें इस पेशे में ला पटकती हैं।

'वेश्या' की माधुरी सामन्ती समाज में वेश्या होने के कारण की ओर संकेत करती है। प्रेमचंद तक आते-आते भारतीय समाज में बदलाव आने लगा था। पूंजीवाद ने यहाँ पैर पसारना शुरू कर दिया था। इसीलिए प्रेमचंद दूरदृष्टि का परिचय देते हुए वेश्या समस्या का मूल कारण आर्थिक बताते हैं। 'वेश्या' की नायिका माधुरी अपने एक कथन में एक ओर वेश्याओं की व्यथा का जिक्र करती है। और दूसरी ओर इस समाज के ढोंग को भी उजागर करती है। वह कहती है– 'पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगा कर उसे उसी दुरवस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका पवित्र स्थान नहीं है? लकिन तुम उसे उस मन्दिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जाएगी।' (वेश्या, मानसरोवर, भाग 7, पृ. 55.) 'सेवासदन' की नायिका सुमन भी सदन से बहुत क्रोध और व्यथा के साथ कहती है– 'अंधेर में जूठन खाने को तैयार, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं।'

'स्त्री-मुक्ति' की आदर्श स्थिति उसी बदले हुए आजाद समाज में होगी, जिसमें स्त्री-पुरुष में कोई असमानता नहीं होगी, जिसमें लिंग-जाति-धर्म और अर्थ के आधार पर कोई शोषण नहीं होगा, 'सेवासदन' पर टिप्पणी करते हुए रामविलास शर्मा ने इस संदर्भ में उचित ही लिखा है, 'प्रेमचंद समस्या का समाधान देना चाहते थे, लेकिन उचित समाधान देने में ऐतिहासिक सीमाएँ बाधक थीं। नारी की स्वाधीनता और सम्मान-रक्षा का प्रश्न देश की आम सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का ही अंग है। नारी की स्वाधीनता देश में एक स्वाधीन जनतंत्र कायम हुए बिना सम्भव नहीं।' (प्रेमचंद और उनका युग, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 39) प्रेमचंद ने अपनी कई अन्य कहानियों में भी वेश्या जीवन की समस्या को उठाते हुए भारतीय समाज व्यवस्था की कड़ी आलोचना की है। उनके लेखन से साफ जाहिर होता है कि वे स्त्री को उतना ही मनुष्य मानते हैं, जितना पुरुष को। वे उस समाज के प्रति घृणा पैदा करते हैं, जो वेश्याओं को जन्म देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रेमचंद के स्त्री-विषयक दृष्टिकोण की अपनी कुछ सीमाएँ हैं, फिर भी उनके समकालीनों में स्त्री के संबंध में उनसे प्रगतिशील नज़रिया और किसी के पास नहीं दिखता। हिन्दी कथा साहित्य में वे पहले लेखक हैं जो स्त्रियों पर हो रहे जुल्मों-सितम का कड़ा विरोध करते हैं।

2.7 सारांश

इस इकाई में आपने प्रेमचंद के स्त्री संबंधी दृष्टिकोण का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रेमचंद का दृढ़ विश्वास था कि भारतीय स्त्रियाँ दोहरी और तिहरी गुलामी का शिकार हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि स्त्रियों को औपनिवेशिक सत्ता के साथ-साथ पितृसत्ता से भी मुक्ति मिलनी चाहिए। इसी स्थिति में उनकी वास्तविक मुक्ति होगी। प्रेमचंद हिंदी के पहले रचनाकार और चिंतक थे जिन्होंने पति की संपत्ति के अधिकार की वकालत की। वे स्त्री शिक्षा के घनघोर पक्षधर थे। उनका मानना था कि शिक्षित और कामकाजी स्त्रियाँ वास्तविक सामाजिक बदलाव उपस्थित करेंगी। वे स्त्री और पुरुष के बीच किए जाने वाले प्रत्येक भेदभाव के विरूद्ध थे। उन्होंने स्त्री शिक्षा, दहेज, स्त्रियों की खरीद-फ़रोख़्त, तलाक की समस्या और बेमेल विवाह जैसी समस्याओं पर गंभीर चिंतन करते हुए अग्रगामी दृष्टिकोण का परिचय दिया। यह अकारण नहीं है कि प्रेमचंद आज भी

प्रासंगिक बने हुए है। हमें उम्मीद है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्रेमचंद के स्त्री संबंधी दृष्टिकोण से पूरी तरह परिचित हो गई होंगी/गए होंगे।

2.8 अभ्यास

1. प्रेमचंद के स्त्री संबंधी दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
2. प्रेमचंद ने तलाक के संबंध में जो दृष्टिकोण प्रकट किया है, उसका मूल्यांकन कीजिए।
3. इस इकाई के आधार पर उन बिंदुओं की पड़ताल कीजिए जिनके आधार पर प्रेमचंद स्त्री-पुरुष समानता की बात करते हैं।

इकाई 3 दलित जीवन और प्रेमचंद

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्‌देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 वर्ण व्यवस्था की आलोचना

3.3 समानता का समर्थन

3.4 जाति उन्मूलन का उद्‌घोष और प्रेमचंद की कहानियाँ

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास

3.0 उद्‌देश्य

यह इस पाठ्‌यक्रम की तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- वर्ण व्यवस्था के प्रति प्रेमचंद के दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- दलित समाज पर सदियों से हो रहे अत्याचारों से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे।
- यह जान सकेंगे/सकेंगी कि प्रेमचंद जाति, धर्म, अर्थ, लिंग एवं हर प्रकार की विषमता के विरूद्ध थे।
- प्रेमचंद के राष्ट्र संबंधी दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- यह देख सकेंगी/सकेंगे कि प्रेमचंद शोषण के पूरे तंत्र को कितनी बारीकी से देखते और दिखाते हैं।

3.1 प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के दूसरे-तीसरे और चौथे दशक में छूत-अछूत के मुद्‌दे पर जिस गहरी संवेदनाशीलता से प्रेमचंद ने लिखा, किसी और ने नहीं। प्रेमचंद के सामने यह बात बिल्कुल साफ थी कि यह समस्या मूलतः हिन्दू समाज की समस्या है। देश की राजनीतिक गुलामी को गहरे तक महसूस करने के बाद वे यह जान चुके थे कि जाति या धर्म नहीं, मनुष्य के लिए मनुष्य ही महत्वपूर्ण है और यह भी कि साम्प्रदायिकता किसी भी रूप में खतरनाक ही होती है।

3.2 वर्ण व्यवस्था की आलोचना

प्रेमचंद हिन्दू समाज की इस विडम्बना से बहुत आहत थे कि यह समाज जिसे अपना भाई कहता है, उसी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करता है कि मनुष्यता सिहर उठी है। उनके लिए यह चिन्ता का विषय था कि यह कैसा समाज है, जो मनुष्य को उसके गुणों-अवगुणों से नहीं, बल्कि उसकी जाति से देखता हैं उन्हें इस बात को लेकर कोई भ्रम नहीं था कि यह पहनशील प्रवृत्ति सिर्फ हिन्दू समाज के लिए नहीं बल्कि भारतीय समाज के लिए भी अत्यन्त घातक है। 26 सितम्बर, 1932 को उन्होंने अपने लेख 'हमारा कर्तव्य' में साफ-

साफ लिखा कि—'हमारा कर्तव्य तभी पूरा होगा, जब हम देश के वर्तमान अछूतपन को जड़मूल से नष्ट कर देंगे।' (विविध प्रसंग, भाग2, पृ. 441) यहाँ गौर करने की बात है कि प्रेमचंद वर्णव्यवस्था में किसी आंशिक संशोधन की बात न करते हुए एक आकाशधर्मी हृदय और बुद्धि का परिचय देते हैं। इसी निबन्ध में वे आगे लिखते हैं—'क्या कोई भी वर्णाश्रम अपने हृदय पर हाथ रख कर कह सकता है कि वास्तव में यह छूआछूत उन्हें धर्म की दृष्टि से उचित प्रतीत होता है? नहीं, कोई भी नहीं कह सकता। एक स्वार्थ ही इसका कारण है। पर याद रहे, यह इस समय का स्वार्थ, वर्ष दो वर्ष चाहे उनकी छाती को ठण्डा भले ही कर दे, पर आगे वह उनकी पुरानी से पुरानी, दृढ़ से दृढ़ बुनियाद को भी उखाड़ फेंकेगा। वे स्वार्थ के जिस सुन्दर खिलौने से बच्चों की तरह खिलवाड़ कर रहे हैं, वह असल में डायनामाइट है, जो उनकी सात पुश्तों को ध्वस्त कर डालेगा। इसे दूर फेंक देना चाहिए, वरना फिर पश्चाताप का भी समय न मिलेगा।' (वही, पृ. 441) प्रेमचंद के इस कथन को आज भी भारतीय राजनीति में चरितार्थ होते देखकर अनुमान किया जा सकता है कि प्रेमचंद कितने दूरदर्शी थे। वे आने वाले समय के भारतीय समाज को देख रहे थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि बड़ा लेखक वही होता है जो अपने समय और समाज के सच को गहराई से महसूस कर व्यक्त करने के साथ-साथ आने वाले समय और समाज के विषय में भी अपनी तार्किक राय व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में तो अपने समय और समाज के सच के सहारे भविष्य को देखने की कोशिश करने वाला लेखक ही बड़ा महान होता है।

प्रेमचंद जिन दिनों लगातार इस ज्वलन्त विषय पर लिख रहे थे, उन्हीं दिनों गांधी जी ने भी कहा था— 'अस्पृश्यता या छुआछूत अगर हिन्दू धर्म में हो, तो मुझे कहना पड़ेगा कि उसमें शैतानियत भरी हुई है, धर्म नहीं। पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू-धर्म यह सब कुछ नहीं है। जब तक प्रत्येक हिन्दू अपने चमार भंगी आदि भाइयों को भी अपने सगे भाई की तरह हिन्दू न समझेंगे, तब तक मैं उन्हें हिन्दू ही नहीं समझूँगा। मनुष्य तिरस्कार और दया इन दो चीजों के साथ नहीं रह सकता।' (महात्मा गांधी— स्रोत-वही, शीर्षक 'हमारा कर्तव्य'।) हम गौर करें तो पाएँगे कि गांधी जी के इस कथन में 'धर्म' महत्वपूर्ण होते हुए भी 'समता' से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। कोई भी समाज या देश- 'विषमता' में रहते हुए विकास नहीं कर सकता। गांधी जी और प्रेमचंद, दोनों ही इस सत्य से पूर्णतः परिचित थे।

प्रेमचन्द अच्छी तरह जानते थे कि हमारे समाज में, तथा कथित सवर्ण समाज में ऐसे लोग भरे पड़े हैं जो दलितों के रहन-सहन, उसकी अशिक्षा आदि को बीच में लाकर उनके विकास का मार्ग अवरुद्ध करने की कोशिश कर रहे है। ऐसे लोगों की मंशा यह होती थी कि अगर ये दलित आगे बढ़ जाएँगे तो उनका बेगार कौन करेगा! कौन उनकी जी हजूरी करेगा। किसका शोषण करके वे अपने बड़प्पन की भूख को शान्त करेंगे! प्रेमचंद ऐसे लोगों को अच्छी तरह पहचानते थे। उन्होंने लिखा है— 'कहा जाता है कि अछूतों की आदतें गन्दी हैं, वे रोज स्नान नहीं करते, निषिद्ध कर्म करते हैं, आदि। क्या जितने सछूत हैं, वे रोज स्नान करते हैं, क्या कश्मीर और अल्मोड़ा के ब्राह्मण रोज नहाते हैं? हमने इसी काशी में ऐसे ब्राह्मणों को देखा है, जो जाड़ों के महीने में एक बार स्नान करते हैं फिर भी वे पवित्र हैं। यह इसी अन्याय का प्रायश्चित है कि संसार के अन्य देशों में हिन्दू-मात्र को अछूत समझा जाता है। फिर शराब क्या ब्राह्मण नहीं पीते। इसी काशी में हजारों मदसेवी ब्राह्मण-और वह भी तिलकधारी-निकल आएँगे, फिर भी वे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणों के घरों में चमारियाँ हैं, फिर भी उनके ब्राह्मणत्व में बाधा नहीं आती, किन्तु अछूत नित्य स्नान करता हो, कितना ही आचारवान हो, वह मन्दिर में नहीं जा सकता। क्या इसी नीति पर हिन्दू धर्म स्थिर रह सकता है?' (प्रेमचंद-विविध प्रसंग, भाग 2- 'अछूतों को

मन्दिर में जाने देना पाप है?') प्रेमचंद का यह प्रश्न कई दूसरे संदर्भों में आज भी वैसे ही खड़ा है। समाज के सत्ताधारी वर्ग का छद्म बराबर से खतरनाक रहा है। कोई भी छद्म विकास का कारण नहीं हो सकता। ऐसे ही विचारों से ओत-प्रोत प्रेमचंद छद्म से दूर हटकर 'हृदय-मन्दिर' को खोलने की बात करते हैं। (वही, पृ. 456–'सनातन धर्म का प्रचार')

'मन्दिर' शीर्षक कहानी की नायिका सुखिया दलित है। वह अपने रोगी पुत्र के ठीक होने के लिए मन्दिर में पूजा करना चाहती है। लेकिन पुजारी द्वारा अनुमति न मिलने के कारण वह ऐसा नहीं कर पाती है। रात में ज्यों-ज्यों रात बढ़ती है, उसके पुत्र जियावन की हालत खराब होती जाती है। वह घबराकर पुत्र को गोद में लिए मन्दिर की ओर भागती है। मन्दिर में ताला पड़ा देखकर वह उसे तोड़ डालती है। तोड़ने की आवाज से पुजारी जाग जाता है और उसके शोर मचाने से गाँव के कई व्यक्ति इकट्ठे होकर सुखिया को मारने लगते हैं। एक बलिष्ठ व्यक्ति द्वारा धक्का दिए जाने पर वह पुत्र समेत गिर पड़ती है। ठोस जमीन पर गिरने से उसके पुत्र जियावन की मृत्यु हो जाती है। यह है हमारा प्रेमचंद युगीन भारतीय समाज। एक दलित स्त्री की आस्था है कि वह मन्दिर में पूजा कर लेगी तो ईश्वर की कृपा से उसका पुत्र निरोग हो जाएगा। लेकिन तथाकथित सवर्णों की एक पूरी जमात न सिर्फ उसे रोकती है, बल्कि मनुष्यता को ताख़ पर रखकर उसे इस कदर मारती-पीटती है कि उसका प्राण-प्यारा पुत्र ही इस दुनिया से विदा हो जाता है। अस्पृश्यता और शोषण का इससे घृणित रूप और क्या हो सकता है! यहाँ प्रश्न उठाने वाले प्रेमचंद की प्रगतिशीलता पर प्रश्न भी उठा सकते हैं कि प्रेमचन्द एक दलित स्त्री को रोगी पुत्र की रक्षा के लिए डॉक्टर की बजाय मन्दिर में क्यों ले जाते हैं? प्रश्न एक स्तर पर उचित भी प्रतीत होता है किन्तु जब हम तत्कालीन भारतीय समाज और हिन्दू मानस की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि धर्म और ईश्वर में आस्था उन दिनों एक बड़ी चीज थी। गुलाम देश के लोग कर्म करते हुए भी एक सीमा तक ईश्वरवादी हो जाते हैं। यद्यपि ऐसा न हो तो ज्यादा उचित है। गुलामी में जी रहे स्वतंत्रता के योद्धाओं के लिए ईश्वर एक आत्मबल की तरह था। इसके साथ ही सदियों पुरानी इस व्यवस्था का प्रभाव सुखिया पर पड़ना था, जो सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का वास मानते हुए भी उसकी पूजा-अर्चना के लिए मन्दिरों का निर्माण कराती है। जिसकी व्यवस्था का आधार ही है कि ईश्वर ही सब कुछ करता है। चूँकि सुखिया पढ़ी-लिखी और किसी वैज्ञानिक विचारधारा से 'लैस' नहीं है, अतः उसका पुत्र के प्राणों की रक्षा हेतु ईश्वर की शरण में जाना या जाने का प्रयास करना अस्वाभाविक अथवा लेखक का प्रतिक्रियावाद नहीं है। इस कहानी में एक और गूंज है। वह यह कि अगर सुखिया को लगता है कि उसका पुत्र मन्दिर में पूजा कर लेने से ठीक हो जाएगा तो उसे क्यों रोका जाए? जबकि उसके पास भी वैसा ही शरीर, वैसा ही खून और वैसी ही प्रकृति है, जैसा कि तथाकथिक सवर्णों के पास। प्रेमचंद की प्रगतिशीलता इसी में है और किसी में भी हो सकती है कि अगर किसी की आस्था मन्दिर में जाने की है और उसके जाने से समाज में समता की फसल लहलहा सकती है, तो उसको जाने देना ही मानवीय और सामाजिक दोनों दृष्टियों से श्रेयस्कर है।

समाज में उपस्थित 'मन्दिर' शीर्षक कहानी के खल-पात्रों को ध्यान में रखकर ही प्रेमचंद ने लिखा था– 'फिर क्यों न धर्म का संसार में ह्रास हो, क्यों न रूस वाले धर्म को अफीम का नशा समझें, क्यों ने गिरजे ढाये जाएँ, और धर्म को कलंकित करने वाले इन स्तम्भों का समाज से बहिष्कार कर दिया जाए। विद्या अगर आदमी को उदार बनाती है, उसमें सत्य और न्याय के ज्ञान को जगाती है, उसमें इन्सानियत पैदा करती है, तो वह विद्या है-अगर वह अभिमान बढ़ाती है, स्वार्थपरता की वृद्धि करती है तो वह अविद्या से भी बदतर है। ऐसी विद्या से मूर्खता हजार गुनी अच्छी। धर्म का मूल तत्व आत्मा की एकता है। जो आदमी इस तत्व को नहीं समझता, वह वेदों और शास्त्रों का पण्डित होने पर भी मूर्ख है,

जो दुखियों के दुःख से दुःखी नहीं होता, जो अन्याय देखकर उत्तेजित नहीं होता, जो समाज में ऊँच-नीच, पवित्र-अपवित्र के भेद बढ़ाता है, वह पण्डित होकर भी मूर्ख है।' (प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 447 'अछूतों को मन्दिरों में जाने देना पाप है?')

3.3 समानता का समर्थन

प्रेमचंद के दलित संबंधी चिन्तन पर विचार करते हुए डॉ. भीमराव अम्बेडकर की स्मृति बहुत जरूरी है। डॉ. अम्बेडकर ने गांधी जी द्वारा चलाए जा रहे दलितों के मन्दिर प्रवेश के अधिकार संबंधी आन्दोलन से अपना मतभेद प्रकट करते हुए अपना मन्तव्य प्रकट किया था कि अछूतों को मन्दिर-प्रवेश की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी इस बात की कि साधारण हिन्दू उनसे सज्जनता का व्यवहार करें और उन्हें अपने बराबर समझें। (डॉ. अम्बेडकर-स्रोत-प्रेमचंद-विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 445 'हरिजनों के मन्दिर प्रवेश का प्रश्न') यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं है कि अम्बेडकर का मत सौ प्रतिशत उचित था और आज भी है। किन्तु इस प्रश्न पर भी विचार आवश्यक है कि जो समाज, जिस समाज को अपने मन्दिरों में पूजा के लिए नहीं जाने देता, वह उससे बराबरी का संबंध क्या बनाएगा। प्रेमचंद ने लिखा है कि '.......लेकिन इस बात का प्रमाण क्या होगा कि हिन्दू किसी अछूत से सज्जनता का व्यवहार कर रहा है। खाने-पीने की, सम्मिलित प्रथा अभी तक हिन्दुओं में ही नहीं है, अछूतों के साथ कैसे हो सकती है। शहरों के दो-चार सौ आदमियों के अछूतों के साथ भोजन कर लेने से यह समस्या हल नहीं हो सकती। शादी-ब्याह इससे भी कठिन प्रश्न है। जब एक ही जाति की भिन्न-भिन्न शाखाओं में परस्पर शादी नहीं होती, तो अछूतों के साथ यह संबंध कैसे हो सकता है। ये दोनों ही प्रश्न अभी बहुत दिनों में हल होंगे, अर्थात् उस समय जब हिन्दू जाति भेद-भाव को मिटा देगी।' (वही, पृ. 446) यहाँ 'मंत्र' का एक प्रसंग याद आता है। उसमें लीलाधर चौबे दलितों को सवर्णों के समकक्ष लाने वाले प्रचारकों में से हैं। वे सब को समता का पाठ पढ़ाते हैं। एक अछूत उनसे प्रश्न करता है-'मेरे लड़के से अपनी कन्या का विवाह कीजिएगा?......... चौबे जी इसका जो उत्तर दते हैं, वह गौर तलब है– 'जब तक तुम्हारे जन्म-संस्कार न बदल जाएँ, जब तक तुम्हारे आहार-व्यवहार में परिवर्तन हो जाए, हम तुम से विवाह का संबंध नहीं कर सकते, मांस खाना छोड़ो, मदिरा पीना छोड़ो, शिक्षा ग्रहण करो, तभी तुम उच्च वर्ण के हिन्दुओं में मिल सकते हो।' (प्रेमचंद, मंत्र इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 415) यहाँ सहज ही एक प्रश्न उठता है कि क्या उच्च वर्ण के हिन्दू मांस नहीं खाते, मदिरा नहीं पीते, अशिक्षित नहीं है? जाहिर है सबका उत्तर सकारात्मक है। तब फिर क्या उनके वहाँ सवर्ण रिश्ता नहीं करते? खूब करते हैं। फिर अछूतों के लिए इस सवर्ण प्रतिबन्ध का क्या मतलब हुआ? कहने की आवश्यकता नहीं की युग की सीमा के साथ-साथ यह एक सवर्ण का संशय भी था। यद्यपि इस संदर्भ में युग की सीमा का सर्वाधिक अतिक्रमण प्रेमचंद ने ही किया। उनके योगदान को रेखांकित करते हुए प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने कहा है– 'हिन्दी नवजागरण के निर्माताओं में प्रेमचंद, निराला और राहुल सांकृत्यायन ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपने लेखन और चिन्तन में हिन्दी क्षेत्र की दलित समस्या से टकराने की कोशिश की है। हिन्दी नवजागरण का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष स्वाधीनता की चेतना है। उस स्वाधीनता की चेतना से जहाँ दलितों का सवाल जुड़ा है, वहीं साम्राज्यवाद विरोध से सामन्तवाद विरोध जुड़ा हुआ है। यह बात प्रेमचंद के लेखन में मिलती है। उनकी रचनाओं में भी और वैचारिक लेख में भी। प्रेमचंद ने एक जगह लिखा है कि हमारा स्वराज केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करने मात्र से नहीं, बल्कि सामाजिक-जुए, पाखण्डी-जुए से भी, जो विदेशी शासन से अधिक घातक है, मुक्त होने पर ही सम्भव होगा! प्रेमचंद वर्णव्यवस्था और जातिप्रथा के अन्त को भारतीय राष्ट्रीयता की पहली शर्त मानते थे। उन्होंने लिखा कि राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्णव्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद और

धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदना है। राष्ट्रीयता की ऐसी चेतना और धारणा उस समय के किसी अन्य हिन्दी लेखक में शायद ही मिले।' (प्रो. मैनेजर पाण्डेय, साक्षात्कार से- युद्धरत आम आदमी, दलित साहित्य अंक, पृ. 189, सम्पादक- रमणिका गुप्ता)

प्रेमचंद को दलितों की स्थिति का उचित ज्ञान था। उनकी दृष्टि में भी इनके लिए विशेष सुविधा की आवश्यकता थी। उन्होंने 26 दिसम्बर, 1932 को अपने लेख 'पावन तिथि' में साफ-साफ लिखा है कि– 'असल समस्या तो आर्थिक है। यदि हम अपने हरिजन भाइयों को उठाना चाहते हैं तो हमें ऐसे साधन पैदा करने होंगे जो उन्हें उठने में मदद दें। विद्यालयों में उनके लिए वजीफे करने चाहिए, नौकरियाँ देने में उनके साथ थोड़ी-सी रियायत करनी चाहिए।' (प्रेमचंद विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 455-'पावन तिथि') प्रेमचंद चाहते थे कि दलितों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो, जिससे वे अपने जीवन और समाज के अंधकार को दूर करें। ज्ञान के प्रकाश में अपनी अर्थवत्ता को महसूस कर सकें। जब वे शिक्षित होंगे तो अपने दुःख-दर्द को वाणी दे सकेंगे और उसके विरुद्ध संघर्ष भी कर सकेंगे। यहाँ एक और बात की ओर ध्यान जाता है कि प्रेमचन्द अलग से हरिजन छात्रालयों के पक्ष में न थे। उन्हें लगता था कि इससे दूरी और बढ़ेगी। (वही, पृ. 450- 'हरिजन बालकों के लिए छात्रालय') उनका मानना था कि जिस छात्रावास में सवर्ण जातियों के बालक रहें, उन्हीं में हरिजन बालकों को भी उन्हीं सुविधाओं और बराबरी के साथ रखा जाए। ऐसा न होने पर दलित छात्रों के मन में कुण्ठा न बनेगी और उनमें आत्मबल भी आएगा जो उनके विकास में योगदान करेगा। आज प्रेमचंद की इस धारणा पर विचार करते हुए प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द बड़े भविष्यद्रष्टा थे। आज का समाज प्रेमचंद की यह राय जाने-अनजाने पूरी तरह मानने को बाध्य है, और यह बाध्यता बहुत सुखद है।

3.4 जाति उन्मूलन का उद्घोष और प्रेमचंद की कहानियाँ

प्रेमचंद समाज में समता लाने के लिए हरसम्भव प्रयास करने को तैयार थे तो सवर्ण समाज के खलनायकों की एक पूरी जमात उन्हें अपमानित-लांछित करने का हरसम्भव प्रयास कर रही थी। सन् 1931 में प्रेमचंद की अत्यंत मार्मिक और यथार्थवादी कहानी 'सद्गति' प्रकाशित हुई। कहानी का नायक दुखी चमार अपनी बेटी के विवाह का लग्न निकलवाने के लिए पण्डित जी के घर जा कर 'चिरौरी-मिनती' करता है। पण्डित जी काम स्वीकार करते हैं और थोड़ी देर से जाने की बात कह कर बदले में उससे बेगार लेने हेतु एक 'मोटी-सी गाँठ' फाड़ने के लिए दे देते हैं। वह गाँठ फाड़ते हुए बीड़ी पीने की इच्छा से पण्डिताइन से थोड़ी आग माँगता है। पण्डिताइन छू जाने के डर से आग उसके ऊपर ही फेंक देती है और वह जल जाता है। यहाँ गौर करने की बात है कि उसकी फाड़ी और छुई हुई लकड़ी पर खाना बनाने से पण्डिताइन को कोई परहेज नहीं है। लेकिन उसकी देह से छू जाने का अपार डर भरा पड़ा है। प्रेमचंद इस ढोंग को बेपर्दा कर रहे थे। आगे इसी कहानी में दुःखी चमार उस गाँठ को फाड़ते-फाड़ते मर जाता है। यह सवर्ण समाज की दरिन्दगी का दूसरा उदाहरण बनता है। तीसरी महत्वपूर्ण बात जिसे प्रेमचंद ने रेखांकित किया है वह है दलितों का विरोध स्वरूप लाश को न उठाना और चौथी बात कि दलित कहीं कोई हंगामा न खड़ा कर दें, इस डर से उस अछूत को रस्सी के फन्दे से बाँधकर घसीटते हुए गाँव के बाहर खेत में डाल आते हैं, जहाँ गिद्ध, कौए और तमाम जानवर इस मनुष्य की देह को नोचते हैं। एक गिद्ध जीवन में नोचता है और दूसरा मृत्यु बाद। पण्डित जी जिसकी लाश को छू नहीं सकते थे, उसी की लाश को मारे डर के अपने कंधे के सहारे खींचते हुए ले जाते हैं और फिर नहा-धोकर पवित्र होने का ढोंग करते हैं। इस प्रभावशाली कहानी पर चारों ओर से टिप्पणियों की बौछार होने लगी।

चूँकि प्रेमचंद सच्चे हृदय से ऊँच-नीच, छूत-अछूत, ढोंग-व्यभिचार आदि को जड़ से समाप्त करने के लिए प्रतिबद्ध थे, इसलिए बिना किसी घबराहट के उन्होंने इन समस्त आक्षेपों का बहुत तार्किक और व्यवस्थित जवाब उपस्थित किया ।

उन्होंने लिखा है— 'राष्ट्रवाद ऐसे उपजीवी समाज को घातक समझता है, और समाजवाद में तो उसके लिए स्थान है ही नहीं। और हम जिस राष्ट्रीयता का स्वप्न देख रहे हैं, उसमें तो जन्मगत वर्णों की गन्ध तक न होगी, वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मणा होगा न हरिजन, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्राह्मण होंगे या सभी हरिजन होंगे।' (प्रेमचंद, विविध प्रसंग भाग, पृ. 473) प्रेमचंद ने जो विरोध झेला, वह यही सिद्ध करता है कि किसी भी युग में किसी उच्च आदर्श के लिए लड़ना सहज नहीं होता।

'गोदान' के ये प्रसंग डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलनों की याद दिलाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे-धीरे प्रेमचंद दलित समस्या के संबंध में डॉ. अम्बेडकर के विचारों को महत्वपूर्ण मानने लगे थे, अन्यथा ऐसे क्रान्तिकारी चरित्रों और घटनाओं का सृजन उस काल में सम्भव न था। यद्यपि प्रभाव चाहे जो हो, लेकिन सन् 1930 से 1936 ई. तक का दलितों से सम्बन्धित प्रेमचंद का लेखन वर्णाश्रम की चूलें हिला गया।

प्रेमचंद के दलितों से संबंधित लेखन पर विचार करते हुए उनकी कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानियों का विवेचन भी जरूरी जान पड़ता है। इन कहानियों में भारतीय समाज, खासकर हिन्दू समाज का अपराधी चेहरा साफ-साफ दिखता है। 'जुरमाना' शीर्षक कहानी की नायिका अलारक्खी दिन भर सड़क की गन्दगी साफ करती है। इसके बावजूद उसका शोषण होता है। उसका अधिकारी दया दिखाकर उसका शोषण करता है। कितनी बड़ी विडम्बना है कि इस समाज के सबल लोग निर्बलों को कभी डरा-धमका कर तो कभी लालच देकर, कभी दया दिखाकर तरह-तरह से दबाते रहते हैं। उन्हें बस अपने स्वार्थ की चिन्ता रहती है।

सन् 1932 में प्रकाशित प्रेमचंद की 'ठाकुर का कुआँ' कहानी एक महान रचना हैं। महान इस अर्थ में कि जो कुछ कहना है, वह इतने सफल और प्रभावशाली ढंग से कहा गया है कि पढ़ने वाला भीतर तक हिल जाता है। यह कहानी 'सद्गति' के बाद प्रकाशित हुई थी। इस संदर्भ में प्रो. नामवर सिंह कहते हैं—'यद्यपि मेरी राय है कि 'सद्गति' और 'ठाकुर का कुआँ' दोनों कहानियों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। वे परस्पर पूरक हैं। 'सद्गति' में है कि पुरोहित वर्ग से दलित का क्या रिश्ता है और पुरोहित वर्ग का आधार तथाकथित धर्म हुआ करता है। मैंने कहा—'तथाकथित धर्म' यानी धर्म का वह रूप जिसे मैं कर्मकाण्ड भी नहीं कहूँगा, बल्कि अत्यन्त विकृत रूप कहूँगा, जिस अर्थ में तुलसीदास ने लिखा था कि—''बेचहिं वेद धरम दुहि लेहीं।' इसलिए जो वेद को बेचने वाले और धर्म को दुह करके पैसा वसूल करने वाले मक्खीचूस हैं, उन्हीं की तरह सद्गति में धर्म का एक ठेकेदार है, जिसके द्वारा शोषण होता है और उसका ठीक दूसरा पहलू है-'ठाकुर का कुआँ' जहाँ लाठी के बल पर, आतंक के बल पर जो भू-स्वामी है, वह कैसे दमन करता है। शोषण के ये दोनों पहलू हैं इसलिए प्रेमचंद दलितों पर होने वाले अत्याचार को चाहे वे आर्थिक हों, सामाजिक हों, धर्मिक हों या ताकत के संबंध रखने वाले हों, उन सभी पहलुओं को एक-एक करके अलग-अलग कहानियों में लेते हैं। इस दृष्टि से 'सद्गति' और 'ठाकुर का कुआँ' कहानी पढ़ी जानी चाहिए।'' (प्रो. नामवर सिंह-'कर्मभूमि'(स्मारिका), सम्पादक- डॉ. सदानन्द शाही, पृ.9) इस कहानी में नायक जोखू बीमार है और जो पानी पी रहा है, उसमें से दुर्गन्ध आ रही है। उससे पानी पिया नहीं जा रहा है। उसकी पत्नी 'गंगी' उसे रोकती है कि दूसरा पानी ला देती हूँ, लेकिन फिर सोचती है—'ठाकुर के कुएँ

पर कौन चढ़ने देगा। दूर ही से लोग डाँट बताएँगे। साहू का कुआँ गाँव के उस सिरे पर है, परन्तु वहाँ भी कौन पानी भरने देगा? कोई दूसरा कुआँ गाँव में है नहीं।' (प्रेमचंद, ठाकुर का कुआँ, मानसरोवर, भाग 1, पृ.142) जोखू उसे रोकते हुए समझाता है कि पानी तो पाएगी नहीं, उल्टे हाथ पैर तुड़ा आएगी। वह कहती है—'वामन देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पाँच लेंगे, गरीबों का दर्द कौन समझता है। एक आशीर्वाद देंगे, पानी न देंगे, एक लाठी मारेंगे, पानी न देंगे, एक एक के पाँच लेंगे, फिर भी पानी न देंगे।' (वही) प्रो. नामवर सिंह इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं- 'प्रेमचंद ने जो विषय चुना, वह जीवन की निहायत जरूरी चीज, अदना-सी चीज पानी है। रोटी के बिना काम चल सकता है। रोटी नहीं, कपड़ा नहीं, मकान नहीं मनुष्य-मनुष्य का इतना दूर तक दमन कर सकता है कि साधारण सी चीज पानी जो सहज मिलना चाहिए, वही पानी नहीं मिल रहा है जबकि कुएँ भरे पड़े हैं। यहाँ प्रेमचंद एक साथ तीनों वर्णों को पूरी चर्चा में ले आते है।' (प्रो. नामवर सिंह-'कर्मभूमि'(स्मारिका), सम्पादक-डॉ. सदानन्द शाही, पृ. 12) फिर गंगी ठाकुर के कुएँ पर पानी भरने जाती है और वहाँ से प्राण बचाकर बिना पानी के ही लौट आती है। देखती है जोखू वही गंदा पानी पी रहा है। इस बीच कहानी घूमती है। सवर्ण घरों में स्त्रियों की स्थिति पर थोड़े में बहुत प्रकाश डालती हुई दलित समस्या पर समाप्त होती हैं। प्रेमचंद इस कहानी में चित्रित करते हैं कि अपनी स्त्रियों को लौंडी समझने वाले ये तथाकथित उच्च वर्ण के लोग गंगी जैसी दलित स्त्रियों को भोगना तो चाहते हैं, लेकिन उन्हें अपने कुएँ से पानी नहीं भरने देते। कितनी बड़ी विडम्बना है कि देह तो चाहिए, लेकिन दिन के उजाले में छूत-छात बरतते हुए, अन्यथा उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। प्रेमचंद सवर्ण समाज के इन पाखण्डों के विरुद्ध तीव्र घृणा पैदा करते हैं। 'ठाकुर का कुआँ' कहानी पर विशेष टिप्पणी करते हुए प्रो. मैनेजर पाण्डेय कहते हैं-'प्रेमचंद की राजनीतिक ओर सामाजिक चेतना उनकी कहानियों और उपन्यासों में अत्यन्त प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुई है। ठाकुर का कुआँ, सद्‌गति, दूध का दाम, मन्त्र जैसी कहानियों में हिन्दू समाज व्यवस्था के भीतर दलितों की दयनीय और दर्दनाक दशा का चित्रण है, तो गोदान जैसे उपन्यास में अपने अधिकारों और सम्मान के लिए दलितों के साहसपूर्ण संघर्ष का वर्णन है। चेखव की प्रसिद्ध कहानी 'वार्ड नं. 6' को पढ़कर लेनिन ने कहा था कि उस समय का सारा रूसी समाज 'वार्ड नं. 6' लगता हैं। प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' को सावधानी से पढ़ने वाला प्रत्येक पाठक यह अनुभव करता है कि पूरा सवर्ण हिन्दू समाज ही 'ठाकुर का कुआँ' है, जिसके पास दलितों को जाने तक की स्वतंत्रता नहीं है। यही कारण है कि मराठी के दलित लेखक प्रेमचंद का बहुत सम्मान करते हैं।' (प्रो. मैनेजर पाण्डेय—साक्षात्कार से-युद्धरत आम आदमी (पत्रिका)-दलित साहित्य अंक, पृ. 189-90, सम्पादक— रमणिका गुप्ता) प्रेमचंद का लेखन भारतीय समाज की आँखें खोलता है।

प्रेमचंद ने सन् 1934 में 'दूध का दाम' कहानी लिखी। पाठक को भीतर तक भेदने वाली यह कहानी प्रेमचंद की चेतना और कला का विलक्षण उदाहरण है। इस कहानी की नायिका 'भूंगी' उच्चवर्गी महेश नाथ जी के घर जच्चेखाने में काम कर रही है। उसके वहाँ तीन बेटियों के बाद बेटा पैदा हुआ है। सब प्रसन्न हैं, लेकिन समस्या है कि महेशनाथ की पत्नी को दूध नहीं होता है। ऐसे मे अपने नवजात शिशु को दूध न पिला कर भूंगी महेश जी के पुत्र को दूध पिलाने लगती है। विडम्बना या पाखण्ड देखिए कि अपने पुत्र की जान बचाने के लिए उन्हें एक दलित स्त्री के दूध में कोई छूत नजर नहीं आता। लेकिन प्रेमचंद इतने पर ही नहीं छोड़ते हैं। उसके पुत्र का स्वास्थ्य गिर जाता है। पिता पहले मर चुके हैं और एक दिन महेश जी के घर का परनाला साफ करते हुए साँप काटने से उसकी माँ भूंगी भी मर जाती है। मंगल पूरी तरह अनाथ हो जाता है और महेश बाबू के घर के जूठन पर पलने लगता है। जिसके हिस्से का दूध महेश बाबू का

बेटा अपना अधिकार समझ कर पी जाता था, उसी मंगल को घर भर के खाने के बाद पेट भरने के लिए जूठन मिलता है। इतना ही नहीं, उस अबोध को रहने के लिए मकान के सामने के नीम के पेड़ की छाँव मिलती है। महेश बाबू किसी अछूत को घर में कैसे रहने देते। नीचता और पाखण्ड की अति देखिए कि अछूत का दूध पवित्र है, लेकिन उसकी देह (खासकर पुरुष की तो और!) पूर्णतः अपवित्र। प्रेमचंद उसके (मंगल के) विषय में लिखते हैं—'उसका कोई अपना था, तो गाँव का कुत्ता, तो अपने सहवर्गियों के जुल्म से दुःखी होकर मंगल की शरण आ पड़ता था। दोनों एक ही खाना खाते, एक ही टाट पर सोते, तबियत भी दोनों की एक-सी थी और दोनों एक दूसरे के स्वभाव को जान गए थे।' इतना ही नहीं गाँव वालों की टिप्पणी भी हमारी खोखली सामाजिक व्यवस्था के सच को अभिव्यक्त करती है। प्रेमचंद ने लिखा है -'गाँव के धर्मात्मा लोग बाबू साहब की इस उदारता पर आश्चर्य करते। ठीक द्वार के सामने, पचास हाथ भी न होगा-मंगल का पड़ा रहना उन्हें सोलहों आने धर्म विरुद्ध जान पड़ा। छिः। यही हाल रहा, तो थोड़े ही दिनों में धर्म का अन्त ही समझो।' (दूध का दम, मानसरोवर, भाग 2, पृ. 208) यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि मंगल को इस तरह रखना उदारता है तो अनुदारता कितनी भयानक होगी या अगर उसे दरवाजे से हटा देना धर्म है तो 'अधर्म' की परिभाषा क्या है? 'गाँव वाले संकोचवश उस घर तक जाते हैं अन्यथा उन्हें मंगल के वहाँ होने से घृणा होती है।' कहने की आवश्यकता नहीं कि घृणा तो इस मानसिकता के लोगों से होती है जो हाड़-मांस के मनुष्यों को कर्म के आधार पर नहीं, जाति के आधार पर बाँटकर देखते समझते हैं।

प्रेमचंद को हिन्दू समाज व्यवस्था के प्रति किसी प्रकार का भ्रम न था। वे अपने तीक्ष्ण विवेक और पैनी दृष्टि से इस समाज के समस्त कुकर्मों और पाखण्डों का खुलासा करके उसके इस कुरूप चेहरे के प्रति सार्थक घृणा पैदा करते हैं। 'कफन' शीर्षक विवादास्पद कहानी में प्रेमचंद ने यही चित्रित करना चाहा है। यद्यपि आजकल के दलित चिन्तकों का मानना है कि वह दलित विरोधी कहानी है। (ओमप्रकाश वाल्मीकि-जनमत, 1995-सम्पादक-रामजी राम) इस प्रसंग में मुझे प्रो. मैनेजर पाण्डेय का यह विचार बहुत तर्कसंगत प्रतीत होता है कि—'उनकी 'कफन' कहानी बहुत लम्बे समय से अनेक तरह से विवादों में घिरी रही हैं। पिछले कुछ समय से उस कहानी को लेकर एक नया विवाद शुरू हआ है, जिसमें दलित लेखकों ने उस कहानी में दलित पात्रों को अमानवीय और अस्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करने का आरोप लगाया है। अगर प्रेमचंद को दलितों के बारे में अपनी इच्छानुसार लिखने का अधिकार है, तो दलितों को भी उनकी या किसी अन्य की रचनाओं को स्वीकार-अस्वीकार करने का अधिकार है। मेरे विचार में 'कफन' में प्रेमचंद ने धीसू और माधव की मानसिकता के लिए स्वयं धीसू और माधव को नहीं, बल्कि सामन्ती समाज के शोषण और पाखण्ड को जिम्मेवार माना है। प्रेमचंद का उद्देश्य भी यही है कि जो व्यवस्था घीसू और माधव की मानसिकता पैदा कर सकती है, उसका नाश मनुष्यता के विकास के लिए आवश्यक है।'' (प्रो. मैनेजर पाण्डेय-साक्षात्कार से—राष्ट्रीय सहारा (हस्तक्षेप) 25 जनवरी 1997, पृ. 3 'दलित चेतना पर विशेष रूप से केंद्रित)।

जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है कि प्रेमचंद एक ऐसे हिन्दुस्तान का स्वप्न देख रहे थे जिसमें किसी भी प्रकार की कोई गुलामी न होगी, जिसमें कोई किसी का जाति-धर्म अथवा लिंग के आधार पर शोषण नहीं कर सकेगा। ऐसा भविष्यद्रष्टा कभी भी मनुष्य विरोधी रचना नहीं लिख सकता। 'कफन' में भी घृणा सामन्तवाद के प्रति ही है। प्रेमचन्द का हर सम्भव प्रयास था कि राष्ट्र उन्नति के पथ पर आगे बढ़े। तभी तो उन्होंने 8 जनवरी, 1934 को लिखा—'पुराहितों के प्रभुत्व के दिन अब बहुत थोड़े रह गए हैं और समाज और राष्ट्र की भलाई इसी में है कि जाति से यह भेद-भाव, यह एकांगी प्रभुत्व, यह खून चूसने

की प्रवृत्ति मिटायी जाए, क्योंकि जैसा हम पहले कह चुके हैं, राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्णव्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद और धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदना है।' (प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 476-'क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं?') कहने की आवश्यकता नहीं कि यह जड़ बहुत तेजी से खुद रही है। दलितों में आत्मसम्मान की भावना आ चुकी है। वे अपना हक जान चुके हैं और वे सरकार के नहीं, सरकार उनकी मोहताज हो गई है। आज किसी दलित का शोषण उच्च वर्ण के लिए असम्भव व्यापार हैं। प्रेमचंद का स्वप्न धीरे-धीरे सार्थक होता दिख रहा है। भारतीय समाज, खासकर हिन्दू समाज का बदरंग चेहरा ठीक होने लगा है। लोगों को प्रेम की महत्ता और जाति-पाति की निरर्थकता समझ में आने लगी है।

3.5 सारांश

इस इकाई में आपने प्रेमचंद के दलित जीवन संबंधी दृष्टिकोण का गहन अध्ययन किया है। प्रेमचंद भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त असमानता और शोषण के चक्र के मुखर विरोधी थे। उन्होंने खुलकर वर्ण व्यवस्था के प्रति अपना विरोध दर्ज किया और यह लिखा कि भारतीय समाज का वास्तविक तभी संभव होगा जब वर्ण व्यवस्था का समूल नाश हो जाएगा। यही कारण है कि समाज के वर्चस्वशाली वर्ग ने प्रेमचंद का व्यापक विरोध किया लेकिन प्रेमचंद अपने दृष्टिकोण पर अडिग रहे। प्रेमचंद का समूचा लेखन स्वाधीनता का लेखन है। यहाँ यह लिखना आवश्यक है कि प्रेमचंद के लिए स्वाधीनता का अर्थ सिर्फ उपनिवेशवाद से स्वाधीनता नहीं है। उनके लिए स्वाधीनता एक व्यापक अर्थ वाला पद था। उनकी स्वाधीनता का आशय है – दलितों की वर्ण व्यवस्था से स्वाधीनता, स्त्रियों की पितृसत्ता से स्वाधीनता, किसानों की ज़मीदारी व्यवस्था से स्वाधीनता, मजदूरों की पूँजीवाद से स्वाधीनता। हमें उम्मीद है, इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्रेमचंद की अग्रगामी दृष्टि से ठीक से परिचित हो गई होंगी/गए होंगे।

3.6 अभ्यास

1. वर्ण व्यवस्था के प्रति प्रेमचंद के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
2. प्रेमचंद ने समानता का समर्थन किन आधारों पर किया है? स्पष्ट कीजिए।
3. प्रेमचंद की कहानियों में अभिव्यक्त जाति उन्मूलन की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 किसान समस्या, साम्प्रदायिकता की समस्या और प्रेमचंद

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 किसान समस्या और प्रेमचंद

4.3 साम्प्रदायिकता की समस्या और प्रेमचंद

4.4 सारांश

4.5 अभ्यास

4.0 उद्देश्य

यह इस पाठ्यक्रम चौथी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- प्रेमचंद के समय के किसानों व मजदूरों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति से अवगत हो सकेंगी/सकेंगे;
- प्रेमचंद के समय की कृषि संबंधी समस्याओं व उनके कारणों को जान सकेंगी/सकेंगे;
- प्रेमचंद के साम्प्रदायिकता संबंधी दृष्टिकोण को जान सकेंगी/सकेंगे;
- प्रेमचंद के सामाजिक-धार्मिक एकता संबंधी दृष्टिकोण को जान सकेंगी/सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद ने एक ऐसे राष्ट्र का स्वप्न देखा है जहाँ पर सभी को समानता का अधिकार हो, कोई किसी का शोषण न करे इसलिए प्रेमचंद ने स्त्री समाज से सम्बंधित समस्याओं, दलित समाज से सम्बंधित समस्याओं, आर्थिक भेदभाव, लिंग भेद, किसानों/मजदूरों की समस्याओं, साम्प्रदायिकता आदि को अपनी कहानियों में भरपूर जगह दी है। वे स्वाधीनता को उसके पूर्णरूप में स्वीकार करते है। प्रेमचंद अपनी कहानियों के माध्यम से इन सभी विसंगतियों के खिलाफ पाठक वर्ग व समाज में एक माहौल बनाना चाहते हैं। जिससे इन सभी बीमारियों को जड़ से समाप्त किया जा सके और अपने राष्ट्र को स्वस्थ व निरोगी बनाया जा सके।

4.2 किसान समस्या और प्रेमचंद

प्रेमचंद को किसान जीवन का महान रचनाकार माना जाता है, जो कि उचित भी है। किसान-जीवन की समस्याओं के प्रति जो गहराई और गम्भीरता उनके रचनाकर्म में दिखती है, वह उनकी राष्ट्रीय हित चिन्ता के ही कारण है। वे अच्छी तरह समझ चुके थे कि समाज में जो दलित हैं, स्त्रियाँ हैं, किसान-मजदूर हैं, उनको सुखी रखने और साथ

लेकर चलने से ही राष्ट्रीय समस्याओं का हल हो सकेगा। यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रेमचंद के समय में किसानों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उनके ऊपर एक ओर अंग्रेजी शासन का दबाव था तो दूसरी ओर जमींदारों का जुल्म। इन दोनों के बीच पिस रहे किसान अपनी मेहनत की कमाई भी खो देते थे। कहना चाहिए कि उनसे उनकी मेहनत की कमाई छीन ली जाती थी। सन् 1932 के दिसम्बर में लिखे अपने एक लेख 'हतभागे किसान' में प्रेमचंद ने लिखा था–'भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वह हैं जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मोहताज हैं, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति हैं, वह इन्हीं किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका है। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतें और कचहरियाँ, सब उन्हीं की कमायी के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, पेट भर अन्न को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों तरह मरते हैं।' (विविध प्रसंग, भाग-2, पृ. 468) अगस्त सन् 1933 के अपने एक अन्य लेख 'कृषि सहायक बैंकों की जरूरत' में उन्होंने लिखा है कि 'कृषि भारत का मुख्य व्यवसाय है, पर उसे नोचने वाले तो सब हैं, उसको प्रोत्साहन देने वाला कोई नहीं। उसे भूखे मर कर, पैसे-पैसे के लिए महाजन का मुँह देख कर, अपना जीवन काटना पड़ता है।' (वही, पृ. 497-498) यह थी प्रेमचंद युगीन किसानों की स्थिति। 'गोदान' में भोला होरी से कहता है–'कौन कहता है कि हम-तुम आदमी हैं। हम में आदमियत कहाँ? आदमी तो वह है जिस के पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने कि लिए पैदा हुए हैं।' (गोदान, पृ. 22) बहुत पीड़ा के साथ कहे गए ये वाक्य अपने समय की सच्चाई को व्यंग्य से उभारते हैं।

आजादी के पहले के भारत में जमीदारों का बहुत जोर था। अधिकांश जमींदार अंग्रेजों के खिदमतगार थे और उनकी कृपा-दृष्टि पाकर रैयत पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। ये जमींदार ही अंग्रेजों का शासन मजबूत करते थे। अपने भोग विलास के लिए किसानों पर लगान का बोझ लादकर खुश रहते थे। इनकी स्थिति और अत्याचार से राष्ट्रीय आन्दोलन को भी क्षति पहुँच रही थी। इनके विषय में प्रेमचंद ने लिखा था– 'दिल्लगी यह है कि आज भी जमींदार साहबान अपने को जमीन का मालिक ही समझते हैं। अंग्रेजी सरकार के पहले उनकी हैसियत दलालों की थी, जो बादशाह की ओर से लगान वसूल करने के लिए रखे जाते थे और लगान न अदा कर सकने पर निकाल बाहर किए जाते थे और बड़ी जिल्लत के साथ। अंग्रजी राज्य में उनका मन बढ़ गया। सरकार को देश में एक ऐसे जत्थे की जरूरत थी, जो प्रजा पर उसकी हुकूमत जमाने मे सहायक हो। उसने यह काम इन्हीं लगान वसूल करने वालों से लिया। तब से यह लोग अपने को जमीन का मालिक समझने लगे।' (विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 506–'आगरा जमींदार सम्मेलन') यह थी जमींदरों की उत्पत्ति -कथा। आगे इनके अत्याचार को रेखांकित करते हुए साफ-साफ इनके अस्तित्व के मिटने की सम्भावना व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा– 'आप जमीन के मालिक नहीं खुद सही, लेकिन आप प्रजा के लिए क्या करते हैं? आप प्रजा के दिए हुए कर में से पचास फीसदी लेते हैं, तो उसके बदले आप प्रजा के साथ क्या सलूक करते हैं? आप अगर बीज देते हैं, तो उसका डेवढ़ा वसूल करते हैं, अगर लकड़ी या बाँस देते हैं, तो उसके बदले में चौगुनी बेगार लेते हैं और आज आप का अस्तित्व इतना निरर्थक हो गया है कि आपको यह शंका हो रही है कि कहीं भविष्य में आपका निशान ही न मिट जाए।' (वही, पृ. 506) सन् 1934 के कथन को पढ़ते हुए याद रखना आवश्यक है कि इससे पहले बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में अवध का किसान आन्दोलन हो चुका था। इस आन्दोलन की ऊष्मा ने जमींदारों को हिलाकर रख दिया था। इनकी जायदाद रक्षा के लिए सरकारी प्रयासों की आलोचना करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है कि–'........उन्हीं जमींदारों में बहुत ऐसे हैं, जिनका अधिकांश जीवन नगरों की

विलासिता में व्यतीत होता है। उन्हें अपनी प्रजा से केवल इतना सम्बन्ध है कि प्रजा उनकी सीधी, बेजबान, दुधार गाय हैं उनका काम केवल गाय का दूध दुह लेना है। गाय को भूसा खली भी मिलता है या नहीं, इसकी उन्हें बिल्कुल चिन्ता नहीं होती। कितने ही तो अपने इलाके का दर्शन तक नहीं करते। मुख्तार उन्हें रुपये देता जाए, बस, और उनसे प्रजा के सुख-दुःख से प्रयोजन नहीं। ऐसे जमींदारों की रक्षा करके सरकार उनकी विलासी मनोवृत्ति को और प्रोत्साहित करेगी।' (वही, पृ. 382) जमींदारों के प्रति प्रेमचंद का दृष्टिकोण उनकी कहानियों और उपन्यासों में भी साफ हैं। 'उपदेश' कहानी के जमींदार पण्डित देवरत्न पर व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं—'कृषि संबंधी विषयों से उन्हें विशेष प्रेम था। पत्रों में जहाँ कहीं भी किसी नई खाद या किसी नवीन आविष्कार का वर्णन देखते, तत्काल उस पर लाल पेंसिल से निशान कर देते और अपने लेखों में उसकी चर्चा करते थे। किन्तु शहर से थोड़ी दूर पर उनका एक बड़ा ग्राम होने पर भी, वह अपने किसी आसामी से परिचित न थे।' (उपदेश-मानसरोवर, भाग 8, पृ. 227) 'नशा में जमींदार का पुत्र ईश्वरी अपने निर्धर मित्र को अपने घर ले जाते हुए समझाता है—'लेकिन भाई' एक बात का ख्याल रखना। अगर वहाँ जमींदारों की निन्दा की तो मुआमिला बिगड़ जाएगा और मेरे घर वालों को बुरा लगेगा। वह लोग तो असामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने असामियों को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। आसामी भी यही समझता है। अगर उसे सुझाव दिया जाए कि जमींदार और आसामी मे कोई मौलिक भेद नहीं है, तो जमींदारों का कहीं पता न लगे।' (नशा-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियां- प्रेमचंद, पृ. 80) 'नमक का दारोगा' के पण्डित आलोपीदीन के विषय में प्रेमचंद लिखते हैं— 'पण्डित आलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपये की लेन-देन करते थे। इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे, जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी लम्बा-चौड़ा था। ....अंग्रेजी अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने जाते और उनके मेहमान होते।' (नमक का दारोगा-मानसरोवर-भाग 8, पृ.269)

एक ओर किसानों पर लूट और दूसरी ओर उनकी स्थिति का कोई ख्याल नहीं। कृषि की उन्नति के विषय में कोई चिन्ता नहीं। प्रेमचंद इसको रेखांकित करते हुए एक 'डेटा' प्रस्तुत करते हैं— 'लार्ड कर्जन ने 1901 में यहाँ की व्यक्तिगत आय का अनुमान तीस रुपया साल किया था। 1915 में एक दूसरे हिसाबदां ने इस अनुमान को पचास रुपये तक पहुँचाया और 1915 में यह समय था जब योरोपीय महाभारत ने चीजों का मूल्य बहुत बढ़ा दिया था। 1930 में वही हालत फिर हो गई जो 1901 में थी और हिसाब लगाया जाए तो आज हमारी व्यक्तिगत आय शायद पच्चीस रुपये से अधिक न हो, पर आज तक किसी ने किसानों की दशा की ओर ध्यान नहीं दिया और उनकी दशा आज भी वैसी है जो पहले थी। उनके खेती के औजार, साधन, कृषि-विधि, कर्ज, दरिद्रता, सब कुछ पूर्ववत है।' (विविध प्रसंग-भाग 2, पृ.486-487)

प्रेमचन्द इस बात को लेकर बिल्कुल ही साफ थे कि राष्ट्रीय उन्नति के लिए किसानों-मजदूरों का विकास बहुत आवश्यक है। कर्ज में डूबे भारतीय किसानों के विषय में अपने एक अन्य लेख 'जबर्दस्ती' में प्रेमचंद ने लिखा— 'भारतीय किसानों की इस समय जैसी दयनीय दशा है, उसे कोई शब्दों में अंकित नहीं कर सकता। उनकी दुर्दशा को वे स्वयं जानते हैं— या उनका भगवान जानता है। जमींदार को समय पर मालगुजारी चाहिए, सरकार को समय पर लगान चाहिए, खाने के लिए दो मुठठी अन्न चाहिए, पहनने के लिए एक चीथड़ा चाहिए, चाहिए सब कुछ, पर एक ओर तुषार तथा अतिवृष्टि फसल को चौपट कर रही है, एक ओर आँधी उनके रहे-सहे खेत को भ्रष्ट कर रही है— दूसरी ओर रोग, प्लेग, हैजा, शीतला, उनके नौजवानों की हरी-भरी तथा लहलहाती जवानी में उसी तरह दुनिया से उठाए लिए चली जा रही है, जिस तरह लहलहाता खेत अभी छः दिन पूर्व के

पत्थर-पाले से जल गया। गल्ला पैदा हो रहा है, पर भाव इतना मन्दा है कि कोई दो वक्त भोजन भी नहीं कर सकता। स्त्री के तन पर जो दो-चार गहने थे, वो साहूकार के पेट से बच कर सरकार की मालगुजारी के पेट में चले गए। नन्हें बच्चे, जो चीथड़ा ओढ़कर जाड़ा काटते थे, वही अब उनका पिता पहन कर तन की लाज ढंक रहा है। माता के पास केवल इतना ही वस्त्र है, जिनसे वह घूंघट काढ़ सके-धोती चाहे टेहुने तक ही क्यों खिसक जाए।' (विविध प्रसंग– भाग-2, पृ. 490) यह थी भारतीय समाज में किसान की स्थिति और जमींदार को मालगुजारी चाहिए। 'पूस की रात' में हल्कू के जोड़े पैसे जमींदार ले लेता है। उसकी फसल जानवर नष्ट कर देते हैं। ठण्ड में उसके पास कपड़ा नहीं है, इसलिए मारे ठण्ड के वह जानवरों को नही भगा पाता। इतनी दयनीय स्थिति के बाद भी जमींदार से पीछा नहीं छूटता है। उसकी पत्नी मुन्नी दुःखी होकर कहती है– 'अब मजदूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।' (पूस की रात-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रेमचंद, पृ. 104) इससे अधिक अमानवीयता क्या होगी कि भरे पेट के लोग अधिकार समझ कर अत्याचार करते हैं। 'गोदान' में होरी कहता है– 'साठ तक पहुँचने की नौबत न आएगी धनिया। इसके पहले ही चल देंगे।' (गोदान, पृ. 8) भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व करता होरी भारतीय किसान के जीवन के सर्वाधिक कटु पक्ष की ओर इशारा करता है। जिनहें भूखे रहकर कठिन परिश्रम करना हो, बिना कपड़ों के पूस की रातें काटनी हों, चैत-बैसाख की धूप-लू में जलना-चलना और ठहना हो, वे भरी जवानी में न मरेंगे तो कौन मरेगा!

प्रेमचंद अपने आरम्भिक लेखन में जमींदारी व्यवस्था में सुधार की आकंक्षा रखते दीख पड़ते हैं किंतु जैसे-जैसे उनका लेखन प्रौढ़ हुआ है, वैसे-वैसे वे जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की ओर अग्रसर होते दिखाई पड़ते हैं। वे साफ-साफ जमींदारों की उपादेयता पर प्रश्न खड़ा कर देते हैं। उनके लिए कृषि व्यवस्था में अगर कोई महत्वपूर्ण है तो सिर्फ किसान और मजदूर। वे इन दोनों वर्गो का जमकर पक्ष लेते हैं। सन् 1932 में लिखे अपने एक लेख 'हतभागे किसान' में वे लिखते हैं– 'खेती की पैदावार बढ़ाने की ओर अभी तक काफी ध्यान नहीं दिया गया। सरकार ने अभी तक केवल प्रदर्शन और प्रचार की सीमा के अन्दर रहना ही उपयुक्त समझा है। अच्छे औजारों, अच्छे बीजों, अच्छी आदतों को केवल दिखा देना ही काफी नहीं है। सौ में दो किसान इस प्रदर्शन से फायदा उठा सकते हैं। जिनको भोजन का ठिकाना नहीं है, जो नाक तक ऋण के नीचे दबा हुआ है, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह नई तरह से बीज या औजार या खाद खरीदेगा। उसे तो पुरानी लीक से जौ भर हटना भी दुस्साहस मालूम होता है। उसमे कोई परीक्षा करने की, किसी नई परीक्षा का जोखिम उठाने की सामर्थ्य नहीं हैं उसे तो लागत के दामों में यह चीजें किस्तवार आदायगी की शर्त पर दी जानी चाहिए। सरकार के पास इन कामों के लिए हमेशा धन का अभाव रहता है। हमारे विचार में इससे ज्यादा जरूरी सरकार के लिए कोई काम ही नहीं है।' (विविध प्रसंग– भाग 2, पृ. 488) प्रेमचंद सम्भवतः अकेले लेखक हैं जो इतने प्रखर ढंग से किसानों के विषय में सरकार के दायित्व की चर्चा करते हैं। इतना ही नहीं, वे प्रान्तीय कौंसिल में जनता के प्रतिनिधियों से अपील भी करते हैं कि यदि सरकार किसानों के हित में कोई काम कर रही हो तो वे उसका सहयोग ही करें, क्योंकि इससे किसानों को फायदा होगा अर्थात् प्रकारान्तर से राष्ट्र को फायदा होगा। सरकार की बात अपनी जगह पर है। प्रेमचंद मूल समस्या की ओर दृष्टि डालते हैं कि किसानों में 'एका' ही नहीं है। 'गोदान' में भोला कहता है– 'हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर भी एक दूसरे को देख नहीं सकते। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो जफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया।' (गोदान, पृ. 22) इसी 'एका' की ओर ध्यान दिलाते हुए उन्होंने अपने लेख 'शक्कर सम्मेलन' में लिखा–'जब तक देश के सुदिन नहीं आते और सभी व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण नहीं हो

जाता, पूंजीपतियों के हाथ में किसानों और मजूरों की किस्मत रहेगी और सरकार ऊपरी मन से नियन्त्रण करने का स्वांग भर कर कोई उपकार नहीं कर सकती। हम तो किसानों को यही सलाह देंगे कि वे खुद अपना संगठन करें।' 16 (विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 496) यहाँ याद रखने की बात है कि सन् 1933 में जब प्रेमचंद ये बातें खिल रहे थे, उससे पूर्व बारदोली और अवध में किसान आन्दोलन हो चुके थे। यह बात साफ है कि उनके ऊपर इन आन्दोलनों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था।

किसान जीवन की समस्याओं को लेकर प्रेमचंद ने दो अन्य मार्मिक कहानियाँ भी लिखी हैं। क्रमशः ये कहानियाँ 'बलिदान' (1918) और 'विध्वंस' (1921) नज़राना और बेगार प्रथा पर आधृत अत्यन्त प्रभावशाली कहानियाँ हैं। 'बलिदान शीर्षक कहानी का नायक गिरधारी अपने पिता की मृत्यु के बाद जमींदार को उसकी इच्छानुकूल नज़राना न दे पाने की स्थिति में खेत से हाथ धो बैठता है। प्रेमचंद ने अपनी इस कहानी में किसान के अपने खेतो से लगाव को चित्रित करते हुए, दिखलाया है कि गिरधारी की आत्मा खेतों पर मँड़राने लगी, जिससे कोई भी किसान उस खेत को लेने से इन्कार करने लगा। यहाँ गिरधारी की आत्मा मँड़राने लगी, जिससे कोई भी किसान उस खेत को लेने के इन्कार करने लगा। यहाँ गिरधारी की आत्मा मँड़राने के प्रश्न को भूत-प्रेत से जोड़ना उचित नहीं है। दरअसल यह गिरधारी के दुःखों और कष्ट का ही विस्तार है। अमृत राय के अनुसार 'गांधी के सत्याग्रह' का एक प्रयोग है। यह भी कहा जा सकता है कि निर्बल की आह का परिणाम है। वे खेत बंजर पड़े रह जाते हैं। कथाकार ने दिखलाया कि अगर 'वे खेत गिरधारी के नहीं हो सकते तो किसी के नहीं होंगे।' (किसान, राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रेमचंद- वीरभारत तलवार, पृ. 260) कहानी के विस्तर को छोड़ें तो मूल प्रश्न नज़राना है। जमींदारों के द्वारा शोषण का एक नया हथियार। इस प्रथा के खिलाफ 9 फरवारी, 1920 के 'प्रताप' में अवध के एक किसान जगदत्त सिंह, फौजी सिपाही की एक चिटठी छपी- 'अवध के किसान'। जगदत्त सिंह ने लिखा- 'अवध की भोली प्रजा यह पुकारकर कहती है कि काश्तकारों से जमींदार खेत छीन लेते हैं। किसान जब खेती के लिए जमींदारों के पास जाते हैं, तब जमींदारन किसानों से पूछते हैं कि कितने रुपये नजर दोगे? किसान कहते हैं कि जो आप फरमावें। इस प्रकार अधिक रुपये नजर लेकर किसी दूसरे किसान पर बेदखली लगा कर जमीन छीनकर, जमींदार उस किसान को जमीन दे देते हैं। कुछ वर्षों के बाद दूसरे से जमीन छीनकर, तीसरे किसान को दे देते हैं और नजर तथा मालगुजारी उससे अधिक तय करते हैं। ....किसान की मृत्यु के पश्चात् जमीन का किसान के लड़के-बच्चों से छीन लिया जाना भी अधर्म है। इस प्रकार का अन्याय बाराबंकी, लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली आदि में बहुतायत से दिखलाई पड़ता है। क्या जमींदार लोग इधर ध्यान देगें?' (वही, पृ. 258-259) ध्यान देने की बात है कि उस काल में नजराना चुकाने के लिए किसानों को बेटियाँ तक बेचनी पड़ी, आत्महत्याएँ करनी पड़ीं। प्रेमचंद ने शोषण की इस बेहूदी प्रथा पर प्रश्न खड़ा किया। इसी प्रकार उन्होंने 'विध्वंस' शीर्षक कहानी में 'बेगार प्रथा' का मार्मिक चित्रण किया। कहानी की नायिका भुगनी बेगार में जमींदार उदयभानु पाण्डे का चना समय पर नहीं भून पाती है। जमींदार इसे अपना अपमान समझते हुए उसका भाड़ खुदवा कर फिंकवा देता है। वह फिर बनाती है तो जमींदार उसके नाद पर लात चलाता है जो उसकी कमर पर लगती है। बुढ़िया झुकने के बजाय तन कर खड़ी हो जाती है। जमींदार उससे गाँव छोड़ने को कहता है तो 'बलिदान' के गिरधारी के ठीक विपरीत उसे चुनौती देती हुई कहती है– 'क्यों छोड़कर निकल जाऊँ? बारह साल खेत जोतने से आसामी भी काश्तकार हो जाता है। मैं तो झोंपड़े में बूढ़ी हो गई। मेरे सास-ससुर और उनके बाप-दादे इसी झोंपड़ी में रहे। अब उसे यमराज को छोड़कर और कोई मुझसे नहीं ले सकता।' (मानसरोवर, भाग-8, पृ. 182) वह सामन्ती व्यवस्था को चुनौती देती है और अपने कथन को सत्य सिद्ध करती हुई जमींदार

द्वारा झोंपड़ी में आग लगाए जाने पर उसी में कूद कर जान दे देती है। लेकिन कहानी यहीं तक नहीं। आग बढ़ती है और पूरे गाँव को अपने चपेटे में ले लेती है। फलस्वरूप जमींदार का घर, परिवार भी जल कर भस्म हो जाता है और परिजन भी उसी में जलकर मर जाते हैं। प्रेमचंद ने लिखा है– 'ज्वालाएँ और भड़कीं और पंडित जी के विशाल भवन को दबोच बैठी। देखते ही देखते वह भवन उस नौका की भांति जो तरंगों के बीच में झकोरे खा रही हो, अग्नि-सागर में विलीन हो गया और वह क्रन्दन-ध्वनि जो उसके भस्मावशेष में प्रस्फुटित होने लगी, भुनगी के शोकमय विलाप से भी अधिक करुणकारी थी।' (वही, पृ. 183) प्रेमचंद दिखलाना चाहते थे कि जो आग गरीबों को जलाती है, वही आग लगाने वालों को भी नष्ट कर देती है। उस व्यवस्था को जड़-मूल से साफ कर देती है। कहानी के प्रसंग में तो ठीक है कि भुनगी तन कर खड़ी हो गई, लेकिन बहुतायत में ऐसा नहीं होता था। यह बेगार व्यवस्था न सिर्फ किसानों को, बल्कि नाई, धोबी, जुलाहे, गड़रिए आदि को भी त्रस्त किए हुए थी। प्रेमचंद ने इस ओर प्रभावशाली ढंग से लोगों का ध्यान आकृष्ट किया।

प्रेमचंद को किसानों से गहरा लगाव था। उसी प्रकार का लगाव जैसे किसान का अपने खेतों के प्रति और माँ-बाप का अपने बच्चों के प्रति होता है। वे सम्भवतः भारतीय साहित्य में पहले लेखक थे, जिन्होंने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने की बात कही और यह प्रश्न उठाया कि किसान और सरकार के बीच यह तीसरा वर्ग (जमींदरों का) क्यों है? इसकी क्या प्रासंगिकता है? उन्होंने जमींदरों को सुरक्षा देने के प्रश्न पर सरकार की आलोचना की। कहने का आशय यह कि किसान भारतीय अर्थव्यवस्था के आधार हैं और उन दिनों इनकी हालत बहुत दयनीय थी, ऐसे में प्रेमचंद अकेले ऐसे बुद्धिजीवी लेखक थे जिन्होंने किसान जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करके लिखा और लोगों तथा सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि– 'हर कोई जानता है कि प्रेमचंद ने समाज के सभी वर्गों की अपेक्षा किसानों के चित्रण में सबसे अधिक सफलता पाई है। वे हर तरह के किसानों को पहचानते थे, उनके विभिन्न आर्थिक स्तर, उनकी विभिन्न विचारधाराएँ, उनकी विभिन्न सामाजिक समस्याएँ–वे किसान जीवन के हर कोने से परिचित थे। जैसी उनकी जानकारी असाधरण थी, वैसा ही किसानों से उनको स्नेह भी गहरा था। किसानों के सम्पर्क में आने वाली शोषण की जंगी मशीन के हर कल पुर्जे से वे वाकिफ थे।' (प्रेमचंद और उनका युग– रामविलास शर्मा, पृ.177) कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी इसी जानकारी ओर स्नेह के फलस्वरूप उन्होंने इतना जीवन्त साहित्य सृजित किया। फिर भी उन्हें लगता था कि अगर व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ तो बड़े किसान बड़े होते जाएँगे और छोटे किसान मजदूर। आज उनकी मृत्यु के पचास वर्ष बाद हरित क्रान्ति के दौर में उत्तर प्रदेश, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और अन्य जगहों पर किसान आत्महत्याएँ कर रहे हैं। वे अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट हैं। आजाद भारत में भी प्रेमचन्द के प्रिय किसान छोटे-छोटे सुखों के लिए मोहताज हैं। आज भी वे 'होरी' की तरह यह गाने को मजबूर हैं कि–'हिया जरत रहत दिन-रैन'।

4.3 साम्प्रदायिकता की समस्या और प्रेमचंद

हिन्दू-मुस्लिम समस्या लम्बे समय से भारत की एक महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक समस्या है। प्रेमचंद ने उस दौर में इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया था, जब देश परतंत्र था और इस समस्या के महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक आशय तत्कालीन परिस्थितियों में विद्यमान थे। यद्यपि यह समस्या आज भी कम भयावह नहीं है, बल्कि आज तो इसका सर्वाधिक दुःखद पहलू यह है कि हम एक साथ लड़कर हासिल की हुई

आजादी में प्रेम से नहीं रह पा रहे है। आज भी हमें अपने-अपने धर्मों के वर्चस्व की चिन्ता मनुष्यता की चिन्ता से ज्यादा महत्वपूर्ण जान पड़ती है। हम अपना-अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं, ऐसा हमने विगत वर्षों से संकेतित किया है। यह कौन नहीं जानता कि 'हिन्दू-मुसलमान न कभी दूध और चीनी थे, न होंगे और न होने चाहिए। दोनों की अलग-अलग सूरतें बनी रहनी चाहिए और बनी रहेंगी। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि उसके नेताओं में परस्पर सहिष्णुता और उत्सर्ग की भावना हो। आमतौर पर हमारे नेता वह सज्जन होते हैं जो अपने सम्प्रदाय की मुसीबतों और शिकायतों का हमेशा बहुत सरगर्मी से रोना रोया करते हैं। वह अपने सम्प्रदाय के लोगों की दृष्टि में लोकप्रिय बनने के लिए उनकी भावनाओं को उकसाते रहते हैं और समझौते के मुकाबिले में, जो उनके इस विलाप को बन्द कर देगा, झगड़े को कायम रखना ज्यादा जरूरी समझते हैं।' (प्रेमचंद-विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 355-'मनुष्यता का अकाल') प्रेमचंद का यह कथन बिना किसी आदर्श और लाग-लपेट के एक सामाजिक सच्चाई को सामने रखता है। यह एक बड़ी सच्चाई है कि धर्म अपनी ढेर सारी कमजोरियों और पाखण्ड के बावजूद समाप्त नहीं होता। सोवियत संघ के बिखरने के बाद उससे जुड़े राष्ट्रों में धार्मिक भावनाएँ फिर प्रबल हो उठी हैं। ऐसे में प्रगतिशील दृष्टिकोण के बावजूद यही अनुमान किया जा सकता है कि समय के प्रवाह में धार्मिक भावनाएँ दब जाती हैं, समाप्त नहीं होतीं। प्रेमचन्द को इसका ज्ञान था, इसीलिए वे धर्मों को समाप्त करने के बदले इनमें सामंजस्य के बिन्दु ढूँढ़ते हैं ताकि व्यक्ति सम्प्रदायवादी भावनाओं से ऊपर उठ कर राष्ट्र के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन कर सके। किसी भी युग में सिर्फ धर्म के प्रति निष्ठा न तो वक्त का तकाजा था और न ही होना चाहिए। मनुष्य का अस्तित्व किसी भी धर्म से ज्यादा महत्व का होता है, यह बात किसी भी धर्मावलम्बी को अच्छी तरह जान लेनी चाहिए।

उन्होंने बहुत खेद के साथ लिखा था– 'दुर्भाग्य से वर्तमान समय में धर्म विश्वासों के संस्कार का साधन नहीं, राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि का साधन बना लिया गया है। उसकी हैसियत पागलपन की-सी हो गई है, जिसका उसूल है कि सब कुछ अपने लिए और दूसरों के लिए कुछ नहीं। जिस दिन यह आपस की होड़ और दूसरे से आगे बढ़ जाने का ख्याल धर्म से दूर हो जाएगा, उस दिन धर्म परिवर्तन पर किसी के कान न खड़े होंगे।' (प्रेमचंद-विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 355) बात बहुत साफ है कि जब धर्म स्वार्थ-सिद्धि का साधन न रहेगा तो इसे अतिरिक्त महत्व मिलना अपने आप बन्द हो जाएगा। प्रेमचन्द अच्छी तरह जानते थे कि पंथगत द्वेष को मिटाकर हम राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो सकते हैं। किसी भी युग में एकता की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति होती है। हिन्दू-मुस्लिम समस्या का सबसे वीभत्स रूप दंगों में देखने को मिलता है।

प्रेमचंद इन दंगों के समाजशास्त्र से पूर्णतः भिज्ञ थे। सन् 1931 के दंगों पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद ने रेखांकित किया था कि इन हत्याकाण्डों से राष्ट्र की क्षति होती है, उस पर हमारी दृष्टि क्यों नहीं जाती है? वे बार-बार सचेत कर रहे थे कि हमारी लड़ाई अंग्रेजों से है, आपस में नहीं। आज भी प्रेमचंद की यह चिन्ता सौ प्रतिशत प्रासंगिक है। फर्क इतना है कि आज हमारी लड़ाई अपने राष्ट्र के दुश्मनों से है, जो हमारे विकास के लिए बाधक बने हुए हैं। राष्ट्रीयता की मजबूती के लिए आवश्यक है कि हम आपसी वैमनस्य को भुलाकर राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दें। प्रेमचंद ने सन् 1932 में लिखा था- '........हम मुँह से चाहे राष्ट्रीयता की दुहाई दें, दिल से हम सभी सम्प्रदायवादी हैं और हर एक बात को सम्प्रदाय की आँखों से देखते हैं। क्या यह सत्य नहीं है कि जब कोई साम्प्रदायिक दंगा हो जाता है, तो हम तुरन्त यह जानने के लिए उत्सुक हो जाते हैं कि उस दंगे में कितने हिन्दू हताहत हुए और कितने मुसलमान। अगर हिन्दुओं की संख्या

अधिक होती है तो हम कितने उत्तेजित हो जाते हैं। इसके विपरीत अगर मुसलमानों की संख्या अधिक होती है, तो हम आराम की साँस लेते हैं। यह मनोवृत्ति राष्ट्रीयता का गला घोंटने वाली है। हमें इस मनोवृत्ति का मूलोच्छेद करना पड़ेगा, अन्यथा हमारा राष्ट्र मधुर स्वप्न ही रहेगा।'

प्रेमचंद ने भारतीय समाज का गहरा व्यावहारिक अध्ययन किया था। वे जानते थे कि कुछ लोग निहित स्वार्थों के वशीभूत होकर आपसी चाल चलकर साम्प्रदायिक दंगे भड़का देते हैं। प्रेमचंद के समय में भी दंगा भड़काने का यह एक प्रमुख तरीका था। अपनी एक टिप्पणी 'स्वार्थान्धता की पराकाष्ठा' में उन्होंने इस नीचता को रेखांकित किया है।' (विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 370-'स्वार्थान्धता की पराकाष्ठा') मौलवियों और पण्डितों के विषय में उनकी जो धारणा थी, वह आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने लिखा है- 'मौलवी और पण्डित साम्प्रदायिक वातावरण में रहने के कारण कुछ तंग ख्याल हो जाते हैं और धर्म के बाह्य लक्षणों और गौण बातों को तात्विक प्रश्नों से बढ़ा देते हैं। एक कट्टर पण्डित की दृष्टि में ठाकुर जी को प्रातःकाल जल चढ़ना या गंगा स्नान कराना किसी बीमार को अस्पताल पहुँचा देने से कहीं अधिक महत्व की बात है। इसी तरह मौलवियों की निगाह में भी रोजा और नमाज आदमियों की खिदमत से कहीं बढ़कर है। इसका नतीजा यह है कि आज सम्प्रदायों में आपस में घोर संग्राम छिड़ा हुआ है जो अक्सर दंगों के रूप में प्रकट हो जाता है।' (वही, पृ. 418–'कुरान में धार्मिक ऐक्य का तत्व')।

साम्प्रदयिकता के विषय में प्रेमचंद ने जो विचार व्यक्त किए हैं, वे एक रचनाकार के भावुक उद्गार भर नहीं हैं, बल्कि समय से सचेत हुए एक मनुष्यधर्मी चिन्तक की वैज्ञानिक सोच का नतीजा है। साम्प्रदायिकता पर विचार करते हुए अपने एक लेख-'समझौता या हार' में उन्होंने लिखा है–'......क्या साम्प्रदायिकता उसी को कहते हैं जो धर्म और आचार पर आधारित हो। वह भी तो साम्प्रदायिकता है जो राजनीतिक सिद्धान्तों पर आधारित होती है। अगर हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे से लड़ते हैं तो क्या सोशलिस्ट और डेमोक्रेट एक दूसरे की पूजा करते हैं? उनकी आपसी लड़ाइयाँ भी उतनी ही भंयकर, उतनी ही रक्तमय होती हैं, बल्कि उस से कुछ ज्यादा। यह विभिन्नता तो किसी न किसी रूप में उस समय तक रहेगी जब तक एक नए युग का उदय न होगा, जब सब एक दूसरे को भाई समझेंगे, स्वार्थ और भेद का अन्त हो जाएगा। वह समय निकट भविष्य में आता नजर नहीं आता।' (वही, पृ. 403) यह एक कालजयी रचनाकार का अनुमान था। काश! कि वह समय आ गया होता किन्तु आजादी के इतने समय बाद भी वह समय आता नजर नहीं आता। प्रेमचंद को पूरा अनुमान था कि–'वर्तमान साम्प्रदायिकता के बाद उस साम्प्रदायिकता का युग आने वाला है, जो राजनीति प्रधान होगी, श्रम और पूजा का भीषण संग्राम छिड़ेगा। इस साम्प्रदायिकता में तो कुछ सहिष्णुता है। वह साम्प्रदायिकता तो सामूहिक स्वार्थ की उपज होगी और यह मानना पड़ेगा कि स्वार्थ धर्म के कम घातक नहीं।' (वही, पृ. 404) आज की साम्प्रदायिकता प्रेमचंद की अनुमानित साम्प्रदायिकता ही हैं आज सत्ता की नोच-खसोट में इन्सानियत मूल्यहीन हो चुकी है। प्रेमचंद इस जहर के प्रभाव से पूरी तरह वाकिफ थे। अपने समय में उन्होंने हर सम्भव कोशिश की कि साम्प्रदायिकता की दीवाल पर चढ़ कर ऊँचे उठने वालों को रोका जा सके। उनका असली चेहरा जनता के समक्ष रखा जा सके। अपने इस प्रयास को फलीभूत करने के लिए उन्होंने इस्लाम धर्म के विषय में फैली भ्रामक धारणाओं का खण्डन करने वाले लेख लिखे। भारत में इस्लाम के फैलने के सामाजिक कारणों को उद्घाटित करते हुए उन्होंने लिखा था– 'यह बिल्कुल गलत है कि इस्लाम तलवार के बल से फैला। तलवार के बल से कोई धर्म नहीं फैलता, और कुछ दिनों के लिए फैल भी जाय, तो चिरजीवी नहीं हो सकता। भारत में इस्लाम के फैलने का कारण, ऊँची जाति वाले हिन्दुओं का नीची जातियों पर अत्याचार था। बौद्धों ने ऊँच-

नीच का भेद मिटाकर नीचों के उद्धार का प्रयास किया, और उसमें उन्होंने अच्छी सफलता मिली, लेकिन जब हिन्दू धर्म ने जोर पकड़ा, तो नीची जातियों पर फिर वही पुराना अत्याचार शुरू हुआ, बल्कि ओर जोरों के साथ। ऊँचों ने नीचों से उनके व्रिदोह का बदला लेने की ठानी। नीचों ने बौद्ध काल में अपना आत्म-सम्मान पा लिया था। वह उच्चवर्गीय हिन्दुओं से बराबरी का दावा करने लगे थे। उस बराबरी का मजा चखने के बाद, अब उन्हें अपने को नीच समझना दुस्सह हो गया। यह खींच-तान हो ही रही थी कि इस्लाम ने नए सिद्धान्तों के साथ पदार्पण किया। वहाँ ऊँच-नीच का भेद न था। छोटे-बड़े, ऊँच-नीच की कैद न थी। इसलाम की दीक्षा लेते ही मनुष्य की सारी अशुद्धिया, सारी अयोग्यताएँ, मानो घुल जाती थीं। ......यहाँ तक कि उच्चवर्गीय हिन्दुओं की दृष्टि में भी उनका सम्मान बढ़ जाता था। हिन्दू अछूत से हाथ नहीं मिला सकता, पर मुसलमानों के साथ मिलने-जुलने में उसे कोई बाधा नहीं होती।......इसलिए नीचों ने इस धर्म का बड़े हर्ष से स्वागत किया, और गाँव के गाँव मुसलमान हो गए। ....यह है इस्लाम के फैलने का इतिहास और आज भी वर्गीय हिन्दू अपने पुराने संस्कारों को नहीं बदल सके हैं।' (वही, पृ. 375-'हिंन्दू-मुस्लिम एकता') 'मंत्र' शीर्षक कहानी में एक बूढ़ा अछूत कहता है—'हिन्दू समाज में रहकर हमारे माथे का कलंक न मिटेगा। हम कितने ही विद्वान कितने ही आचारवान हो जाएँ, आप हमें यों ही नीच समझते रहेंगे। हिन्दुओं की आत्मा मर गई है, और उसका स्थान अहंकर ने ले लिया है। हम अब उस देवता की शरण जा रहे है, जिनके मानने वाले हमसे गले मिलने को आज भी तैयार हैं। वे यह नहीं कहते कि तुम अपने संस्कार बदल कर आओ। हम अच्छे हैं, या बुरे, उसी दशा में हमें अपने पास बुला रहे हैं। ' (मंत्र-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-प्रेमचंद, पृ. 450) इस प्रकार अपनी कहानियों में भी प्रेमचंद ने इस्लाम के विस्तार का सही कारण रेखांकित किया। अपने एक अन्य लेख 'हजरत मुहम्मद की पुण्य-स्मृति' में उन्होंने मुहम्मद साहब के विषय में फैलाई गई ऊल-जुलूल बातो ंका खण्डन करते हुए उन्हें महान बताया। उन्होंने लिखा—'यह भी ध्यान रखने की बात है कि हजरत मुहम्मद ने कहीं भी नए धर्म के प्रवर्तन का दावा नहीं किया। उन्होंने बार-बार कहा है कि मैं प्राचीन नबियों के धर्म को ही पुनर्जीवित करने आया हूँ। उन्होंने बार-बार कहा है कि हरेक धर्म का सम्मान करो, क्योंकि सब धर्मों की तह में केवल एक सच्चाई है। किसी धर्म की उन्होंने निन्दा नहीं की। जब हजरत एक राज्य के अधिकारी हो गए और वह तलवार के जोर से जनता को मुसलमान बना सकते थे, तब भी उन्होंने हरेक धर्म को अपने मतानुसार उपासना करने की स्वाधीनता दे दी थी। यहाँ तक की मूर्ति-पूजकों पर भी कोई बन्धन न था और हरेक धर्म के पवित्र स्थानों की रक्षा करना मुस्लिम सरकार अपना कर्तव्य समझती थी।' प्रेमचंद ने अपने नाटक 'कर्बला' में इतिहास के सहारे यह अभिव्यक्त किया है कि 'कर्बला' (कर्बला के आधार पर) के युद्ध में हुसैन के साथ आर्यों ने मिलकर लड़ाई लड़ी थी। यह इस्लाम के उदय काल में आर्यों और इस्लाम मतानुयायियों के बीच का प्रेम ही था।

हिन्दू मुस्लिम समस्या का एक अंग भाषा-विवाद भी है-हिन्दी-उर्दू विवाद। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि विवाद सन् 1800 में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ जन्मा और परवान चढ़ा। उसके पूर्व इन दोनों भाषाओं में कोई साम्प्रदायिक विवाद न था अन्यथा अब मीर और ग़ालिब जैसे महाकवि अपने को हिन्दी और रेख्ते का कवि नहीं कहते। यहाँ अलग से इंगित करने की आवश्यकता नहीं है कि अंग्रेजों ने अपने 'बांटों और राज करो' के सिद्धान्त के तहत ही हिन्दी को हिन्दुओं और उर्दू को मुसलमानों से जोड़कर देखा तथा इसे प्रचारित करके हिन्दू-मुस्लिम समस्या को और गम्भीर बना दिया। भाषा के आधार पर बना पाकिस्तान है। उर्दू के आधार पर बने एक अलग मुस्लिम राष्ट्र ने आम हिन्दुओं में यह बात गहरे तक भर दी कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है। आज का पढ़ा-लिखा तबका यह जानता है कि भाषा किसी धर्म या जाति की नहीं होती। अगर उर्दू

मुसलमानों की भाषा होती तो पाकिस्तान से लड़कर बंगाली मुसलमान अलग न होते। अरब-ईरान-ईराक-अफगानिस्तान आदि देशों के मुस्लिम भी उर्दू ही बोलते वही सारी दुनिया के हिन्दू हिन्दी बोलते। पूरी दुनिया की बात छोड़ें, हिन्दुस्तान में ही दक्षिण के हिन्दू तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि बोलते हैं। कोई भी बच्चा पैदा होते ही कोई भाषा नहीं बोलने लगता। उसे जिस भी भाषा की शिक्षा-दीक्षा दी जाती है, वह उसी में पारंगत हो जाता है। कौन नहीं जानता कि मध्यकाल में फारसी में जिस एक जाति ने सिद्धहस्तता प्राप्त की थी, वह कायस्थ हिन्दू थे। फिर भी आज यह एक सामाजिक सच्चाई है कि उर्दू की पहचान एक धर्म विशेष की भाषा के रूप में हो गई है जो कि कतई सुखद नहीं है। मुंशी प्रेमचंद की जो ऊँचाई हिन्दी में है, वही उर्दू में भी है। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को ही नयी जमीन और नया आकाश नहीं दिया, वरन् उर्दू को भी दिया। वे यह मानते थे कि उनकी उम्र उर्दू की सेवकाई करते गुजरी है और उर्दू उन्हें प्राणों की तरह प्यारी है। वे भाषा के प्रति तंग दृष्टि रखने वालों की जमकर खबर लेते थे। नियाज फतेहपुरी के एक लेख का जवाब देते हुए उन्होंने लिखा था– 'आपके ख्याल में कोई हिन्दू उर्दू लिख ही नहीं सकता, चाहे वह सारी उम्र इसकी साधना करता रहे, और मुसलमान जन्म से ही उर्दू लिखना जानता है, यानी उर्दू लिखने की योग्यता वह माँ के पेट से लेकर आता है। यह दावा इतना गलत , पोच, लचर और बेवकूफी से भरा हआ है कि इसके जावाब की जरूरत नहीं। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि जिस जबान के साहित्यकार इतने तंग-नजर, अपने घमण्ड में फूले हुए हों, उसका खुदा ही मालिक है, (डॉ. इन्द्र मोहन कुमार सिन्हा- प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज, पृ.360-'उर्दू में फिर औनियत') इस भाषा पर गौर करें तो प्रेमचंद की एकता की पवित्र, भावना और ज्यादा पुष्ट होती है। उन्होंने अपने इसी लेख में साफ-साफ लिखा– 'उर्दू न मुसलमानों की बपौती है न हिन्दुओं की। उसके लिखने और पढ़ने का हक़ दोनों को हासिल है।

किसी भी विवेकशील और संवेदनशील मनुष्य की तरह प्रेमचन्द के लिए यह बड़े दुःख का विषय था कि कुछ लोग इन दोनों समुदायों में प्रेम के सूत्र तलाशने की जगह घृणा के सूत्र ही ढूँढ़ते रहते हैं। उन्हें इनकी एकता से अधिक अपनी सत्ता की चिन्ता सताती रहती है। ऐसे लोगों को फटकारते हुए प्रेमचंद ने लिखा था– 'दो भाई यदि आपस में लड़ने-भिड़ने और मुकदमेबजी करने के बाद चेत जाएँ और आपस में समझौता करने का इरादा कर लें, तो क्या गड़े मुर्दे उखाड़ कर उनमें मेल न होने देना किसी ऊँची मनोवृत्ति का पता देता है? समझौता करते समय हमें पिछली बातों को भुला देना पड़ता है, गुस्से में हमारे मुँह से क्या-क्या अनाप-शनाप बातें निकल गईं, हमने किसी तरह एक दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा की, यह सारी कटुताएँ विस्मृत कर देनी पड़ती हैं। हम सदिच्छा के साथ, ईश्वर पर भरोसा करके प्रेम का हाथ फैलाते हैं। समझौता की यही एक सूरत है। यदि हम अविश्वास करते रहेंगे, तो दूसरा पक्ष भी हमारे ऊपर अविश्वास करता रहेगा। ऐसी दशा में मेल कहाँ से आएगा।' (प्रो. मुहम्मद हबीब, स्रोत-प्रेमचंद-विविध प्रसंग, भाग 2, पृ. 372–'एकता-सम्मेलन') यही प्रेमचंद की पीड़ा थी। यही हमारे समय के प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति की पीड़ा है।

प्रेमचंद अच्छी तरह जानते थे कि राष्ट्र की समस्याएँ किसी एक कौम या जाति की समस्याएँ नहीं हैं। किसी भी युग में राष्ट्र की समस्या उस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की समस्या होती है। उन्होंने बड़ी तार्किकता के साथ यथार्थ बोध कराते हुए लिखा था– 'वास्तव में जो कुछ मतभेद हैं, वह केवल शिक्षित समुदाय के अधिकार और स्वार्थ का है। राष्ट्र के सामने जो समस्या है, उसका संबंध हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी से है। बेकारी से सभी दुःखी हैं। दरिद्रता सभी का गला दबाए हुए है। नित नई-नई बीमारियाँ पैदा होती जा रही हैं। उसका वार सभी सम्प्रदायों पर समान रूप से होता है। कर्ज की

इल्लत में सभी गिरतार हैं। ऐसी कोई सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक दुरव्यवस्था नहीं है, जिससे राष्ट्र के प्रत्येक अंग पीड़ित न हों। दरिद्रता, बीमारी, अशिक्षा, बेकारी, हिन्दू और मुसलमान का विचार नहीं करती।' (वही, पृ. 393 -'आशा का केन्द्र') प्रेमचंद का यह कथन आज की परिस्थिति में भी सौ प्रतिशत महत्वपूर्ण है।

अपने कथा-साहित्य में प्रेमचंद ने अपनी इसी दृष्टि और स्वप्न को महत्व दिया है। 'जिहाद' शीर्षक कहानी में प्रेमचंद ने चित्रित किया है कि अपने-अपने धर्म की वास्तविकताओं से अपरिचित होने के कारण ही हिन्दू-मुस्लिम आपस में लड़ते रहते हैं। 'हिंसा परमो धर्मः' में भी उन्होंने 'शुद्धिकरण' और 'तबलीग' का वर्णन करते हुए इन दोनों सम्प्रदायों की मूर्खताओं को ही उजागर किया है।

'पंच परमेश्वर' शीर्षक कहानी में जुम्मन और अलगू की गाढ़ी मित्रता हिन्दू-मुस्लिम एकता को ही प्रदर्शित करती है। 'कर्मभूमि' में सलीम और अमरकान्त की मित्रता इसी एकता की भावना को मजबूत करती है। कहने का आशय यह कि प्रेमचंद राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखते हुए, जरूरी समझते थे कि हिन्दू-मुस्लिम एक होकर रहें। यद्यपि यह दुःखद है कि ऐसा न तो उनके समय में हो सका और न ही कोई सम्भावना दिख रही है। उन्हीं के शब्दों में कहें तो–'साम्प्रदायिक विद्यालय जिस युग के स्मारक हैं, क्या वह युग समाप्त हो गया है?' (वही, पृ. 367-'मिर्जापुर कॉन्फ्रेंस में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव।)

4.4 सारांश

इस इकाई में आपने भारतीय समाज की समस्याओं के अध्ययन के साथ-साथ प्रेमचंद के दृष्टिकोण का भी अध्ययन किया। आपने देखा कि प्रेमचंद भारतीय समाज के गहरे जानकार थे। वे समस्याओं को सतही ढंग से समझने और अभिव्यक्त करने के विरूद्ध थे। यही कारण है कि उन्होंने भारतीय समाज को क्षति पहुँचाने वाली समस्याओं की गहरी पड़ताल की और अपने कथा-साहित्य में आलोचनात्मक विवेक के साथ चित्रित किया। प्रेमचंद के लेखन से यह स्पष्ट है कि उनकी हर संभव कोशिश थी कि मनुष्यता की रक्षा और निर्वाह का साधन बनें। आप जानते हैं आज भी भारतीय समाज के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं। आज भी कई समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। ऐसे में प्रेमचंद का साहित्य मार्गदर्शक की तरह है। वह हमें हमारी गलतियों का बोध कराता है और उनसे उबरने का विवेक भी देता है।

4.5 अभ्यास

1. क्या प्रेमचंद की कहानियों में किसानों/मजदूरों का सत्ता के प्रति कोई प्रतिरोध नजर आता है? प्रकाश डालिए।

2. प्रेमचंद ने किसानों की किन समस्याओं को अपनी कहानियों में उठाया है?

3. प्रेमचंद राष्ट्रीय विकास की राह में किन समस्याओं को बाधक मानते हैं?

4. प्रेमचंद की कहानियों के माध्यम से उनकी सम्प्रदायिकता सम्बन्धी दृष्टि को स्पष्ट कीजिए।